श्रीपरमात्मने नमः

सचित्र

भक्त-भारती

सुन्दर, सरल कवितामें सात भक्तोंकी कथा

लेखक—

पं० श्रीतुलसीराम शर्मा 'दिनेश'

मुद्रक-प्रकाशक—

घनश्यामदास

गीताप्रेस, गोरखपुर

पहली बार ५२५० | सं० १९८८ | अजिल्द ।≡) सजिल्द ॥=)

श्रीहरिः

दो शब्द

मैंने यह धृष्टता की है जो ऊँचे-से-ऊँचे भक्तोंके चरित्रोंको पद्यबद्ध लिखनेका साहस किया है। मैं एक तुच्छ कलियुगी-जीव, भगवान्‌के उन परम प्रिय भक्तोंके चरित्रोंके रहस्यको क्या लिख सकता हूँ? मैं जानता था कि मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है। परन्तु न जाने भीतरसे कौन प्रेरित कर रहा था जिसके कारण यह भक्तोंकी कथाएँ लिखी गयीं। कविताके विषयमें तो मैं कोरा ही हूँ। फिर भी जो कुछ जैसा बन सका, बनाकर अपना मन सन्तुष्ट किया है। इससे यदि पाठकोंको कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपनेको कृतकृत्य समझूँगा।

तुलसीराम शर्मा 'दिनेश'

श्रीहरिः

निवेदन

भक्तोंकी महिमा कौन गा सकता है। स्वयं भगवान् उनके गुण गाया करते हैं। इस छोटी-सी पुस्तकमें पं० तुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश' ने सात भक्तोंकी कथाएँ लिखकर अपनी लेखनीको पवित्र किया है। उन्हीं कथाओंको हम अपने पाठकोंकी सेवामें समर्पित करते हैं। भक्तोंकी इन कथाओंसे सभी लोग पूरा लाभ उठा सकते हैं।

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

ॐ

भक्त-भारती

ध्रुव

दोहा

जन्मा मनु भगवान्के, पौत्र सुरूप-निधान।
हरि-पद-रति-रत सहज ध्रुव, भावुक भक्त सुजान॥
उसी भक्त-सम्राट्का, वर्णन सरस महान।
कथन किया जाता यहाँ, पढ़िये देकर ध्यान॥

मनु-पुत्र श्रीउत्तानपाद सुजान नृप-अधिराजके,
दो रानियाँ सुरुची, सुनीती थीं रहीं सुख-साजके।
इन रानिरूपा शुक्तियोंसे एक अनमोला मिला-
प्रिय मञ्जु मुक्ता-युग्म, पाकर भूप उर-पंकज खिला॥

जो थी सुनीति, सुनीति-विज्ञा विष्णु-पद-उर-धारिणी,
निज वंश-वर-उद्धारिणी, तिय-धर्म-वर विस्तारिणी।
उसकी समुज्ज्वल कोख ही 'ध्रुव' भक्त जन सफलित हुई,
भव-नद-तरनके मार्गकी बाधा सकल विदलित हुई॥

जो थी सुरुचि नव सुन्दरी, नृपको सतत प्यारी वही,
'उत्तम' कुँवर उसने जना, सुख-भोगकी क्यारी वही।
एकान्तवास सुनीतिका, नृप बात तक करते नहीं,
हरिभक्त हरिकी विमुखता बिन हैं कभी डरते नहीं॥

वह अति सुखी निज भवनमें, प्रिय-पुत्र-मुख लखकर जिये,
संसार-सुख भूली सभी हरिके चरण धर निज हिये।
सौन्दर्यका, सौभाग्यका, प्रिय पुत्रका, अधिकारका,
था गर्व सुरुचीको न कम, उर पात्र था कुविचारका॥

दोहा

एक दिवस जब भूप थे, सिंहासन-आसीन।
राज-वेष-युत सर्वथा, मन नव-वनिता-लीन॥

उत्तम कुवँर ले गोदमें नाना विनोद विलोकते,
शैशव-चपलता भूप शिशुकी थे न किंचित रोकते।
गार्हस्थ्य-सुखका सार सुत-मुख चूमकर थे लूटते,
सुन सुन सहज मधुरे वचन बन्धन वसनके टूटते॥

उस ओरसे आया किलकता, थिरकता हँसता हुआ,
निज मातृ-अङ्क बिसार ध्रुव, नृप-प्रेममें धँसता हुआ।
पहुँचा सिंहासनके समीप, न बात भूपतिने करी,
रानी युवति अति रूपवतिने मति महीपतिकी हरी॥

वह स्नेहका पुतला वहाँपर बस, खड़ा ही रह गया,
बालक चतुर्दिक् देखकर औदास्य-नदमें बह गया।
शिशुको विदित क्या युवति-साँपिनिने डसा भूपाल है,
अब क्या करे, जावे किधर? ध्रुवको न आती चाल है॥

ऐसी दशामें ही अहो! भगवान् जनको झेलते,
जिससे न कोई बोलता भगवान् उससे खेलते।
बोली तड़ित-सी कड़ककर तत्काल सुरुची व्यङ्गसे,
दुर्मुख-विवरसे वाक्य निकले एक साथ भुजंग-से॥

दोहा

ध्रुव! तुम नृपके पुत्र हो, तनिक नहीं सन्देह।
राज्यासनके योग्य यह, नहीं तुम्हारी देह॥

तुम हो निरे शिशु जानते क्या भेद है इस बातमें?
शोणित लखो किसका मिला है इस तुम्हारे गातमें।
तू जन्मकर उसके भला! नृप-गोद चढ़ना चाहता?
वामन यथा आकाश छूने हेतु बढ़ना चाहता॥

अथवा शृगाली-पुत्र गजके शीश चढ़ना चाहता,
अथवा श्वपचि-सुत साम-वैदिक मन्त्र पढ़ना चाहता।
जबतक जगत्पतिको रिझाकर मम उदर आवे नहीं,
तबतक महीपति-गोदको ध्रुव तू कभी पावे नहीं॥

निन्दा स्व-जननीकी हृदयमें साँगसे बढ़कर लगी,
उर फट गया, दुर्वाक्य-शरसे, दुःखकी ज्वाला जगी।
अति अरुण नन्हा होठ रोनेके लिये निकला हहा!
देखा न अपना अश्रु पौंछा क्या भला रोना कहाँ?

झटसे भगा, निज जननिकी जा गोदमें मुखड़ा दिया,
रोने लगा ले-ले हिचकियाँ, आ रहा भर-भर हिया।
अपने जनोंके सामने दुख दुगुन होकर जागता,
मानी नहीं अपमान सहता, विश्व-वैभव त्यागता॥

दोहा

देख देख जिसका बदन, काट रही है काल।
देखा रोता गोदमें, होता यों बेहाल॥

भूली उसे पुचकारना वह भी स्वयं रोने लगी,
व्याकुल विलोका पुत्रको, पल-पल विकल होने लगी।
खिंचती कलेजे लीक-सी, सुतको उठा गोदी लिया,
मुख चूमकर, पुचकारकर, प्रिय पुत्रको धीरज दिया॥

मुख चाँद-सा उज्ज्वल दृगोंकी कालिमामें सन गया,
राकेश तनुपर राहुका अधिकार मानो ठन गया।
'जल्दी बता हे लाल! किसने क्या तुझे है कह दिया?
जिसने तुझे कुछ है कहा, अपना बुरा उसने किया॥

सम्राट्-सुत होकर अहो! तू दीनकी ज्यों रो रहा,
किसने तुझे दण्डित किया खो धैर्य जो तू हो रहा?'
रोता हुआ भरता सुबकियाँ जननिको कहने लगा,
निज तात कृत अन्याय, मानी दुःख-नद बहने लगा॥

'उत्तम चढ़ा गोदी, न मुखसे बात तक की तातने,
इस घावपर छिड़का नमक री मा! सुरुचिकी बातने।
तेरी कड़ी निन्दा-चुटकियोंसे मुझे घायल किया,'
इतना कहा गल रुक गया, दुखसे उफन आया हिया॥

दोहा

वालक सहन न कर सका, माताका अपमान।
धन्य धन्य ध्रुव धन्य तू, सात्त्विक सुमति-निधान॥

दासीने आकर कही, घटना आद्योपान्त।
रानी अति दुःखित हुई, सुनकर अनय-वृतान्त॥

धर धैर्य अपने चित्तमें—अति दुःख-नद बहते हुए,
ध्रुवको सुनीति सु-नाव सौंपी सद्वचन कहते हुए।
'हे वत्स! तू क्यों रो रहा? यह दोष मासीका नहीं,
सब दोष अपने कर्मका, फल टल भला सकता कहीं?

जो कुछ पुरातन कर्म हैं फल यह उन्हींके आ रहे,
संसारके प्राणी सकल सुख-दुख उन्हींसे पा रहे।
सुख-दुःखका दाता न कोई, जीव अपने आप है,
प्रारब्ध-वश ही भोगता प्राणी महा त्रैताप है॥

कारण परस्पर बन रहे प्रारब्ध-फलकी प्राप्तिमें,
हे वत्स! राग-द्वेष करते जीव सुख-दुख-व्याप्तिमें।
सुख-प्राप्त करनेके लिये हरिको रिझाना चाहिये,
संकोच तज उस शोच-मोचन पास जाना चाहिये॥

संसारकी सम्पत्ति जिसके पद-कमलकी धूल है,
उसको न भजना जीवकी कितनी बड़ी यह भूल है!
शिव, शेष, शारद एक पल जिसको भुलाते हैं नहीं,
जिसकी कृपासे कष्ट, जनके पास आते हैं नहीं॥

राजाधिराजोंका अहो! वह एक ही अधिराज है,
हे वत्स! उसकी भक्ति आगे कौन राज-समाज है?
हरिकी कृपा बिन उर-गगन-अघ-मेघ फट सकते नहीं,
अन्तः गहन-वनके सघन अघ-वृक्ष कट सकते नहीं॥

दोहा

हरि-अनुकम्पा मुक्ति-प्रद, सकल सुखोंकी मूल।
सांसारिक सुख-भोग सब, कृपा-लताके फूल ॥

उस-सा दयामय दूसरा आता न मेरी दृष्टिमें,
यह सब उसीकी है झलक जो देखते हैं सृष्टिमें।
उसकी कृपा जिसपर बरसती, फूलता-फलता वही,
जिससे जगत करता घृणा उस दीनपर ढलता वही ॥

जिसका न कोई साथ देता वह उसीके साथ है,
चींटी मतङ्गज तक पहुँचता एक उसका हाथ है।
हैं कान उसके आर्त्त-जनकी 'आह' सुननेके लिये,
हैं हाथ उसके दीन-जनकी शूल चुननेके लिये ॥

हैं आँख उसकी भक्तको सुखमय विलोकनके लिये,
रखता सुदर्शन चक्र वह जन-कष्ट-मोचनके लिये।
उसकी कृपासे वत्स! सहसा सर्व संकट दूर हों,
कायर पुरुष भी शूर हों, रीते सकल भरपूर हों ॥

संसार लक्ष्मीकी अहो! दिन-रात खोज किया करे,
लक्ष्मी जिसे खुद खोजती करमें कमल-दीया धरे।
हे पुत्र! जा उसको रिझा आधार हमसों का वही,
विश्वास है मुझको सही, कल्याणकर पथ है यही ॥'

दोहा

ध्रुवके कोमल चित्तपर, लगी भक्तिकी छाप ।
मानो तबसे हो गये, सहज शमन त्रैताप ॥
पावन उर-कोदण्डपर, श्रद्धा-मौर्वि अखण्ड ।
चढ़ा सहज त्रैताप-हर, शर हरि-प्रेम प्रचण्ड ॥

वह पञ्च-वत्सर-आयु शिशु कोमल सहज तन मन तथा,
निज जननि-अङ्क-सुशुक्तिका मुक्ता मनोहर सर्वथा।
हरिसे मिलनके हेतु बालक हो उठा आतुर महा,
काजल मिला हरि-प्रेमका जल है दृगोंसे बह रहा ॥

निज जननिके चरणारविन्दोंमें नमन सादर किया,
उन्मत्त-सा उठ चल दिया, तत्काल वनका पथ लिया।
झट उठ चली पीछे सुनीति, न थाम निज उरको सकी,
आँसू दृगोंसे झर रहे, सुतमें लगी है टकटकी ॥

सुतका असह्य वियोग हा! उरको विदारे जा रहा,
सुतके दुखोंका ध्यान कर-कर चित्त अति दुख पा रहा।
गृह-द्वारपर जाकर थमी, थामा कलेजा हाथसे,
रोती हुई ने की विनय जगदीश दीनानाथसे—

'हे नाथ! तेरी गोदमें सुत फेंक यह मैंने दिया,
यह जानता कुछ भी नहीं तव पूजनादिककी क्रिया।
रक्षक तुही इसका विपिनमें, जल-अनलके स्थानमें,
भोजन, भ्रमणमें, शयनमें, निशिमें, तृषा-जलपानमें ॥'

दोहा

धन्य-धन्य ध्रुव-जननि तू, तेरा हृदय महान।
हरि-पद-रति-हित सुत किया, अर्पित कुसुम समान॥

पीये हुए पद-कुसुम-प्रेमासव चला वह जा रहा,
जाता हुआ उस काल वह उन्मत्त-सा दिखला रहा।
देवर्षि पथमें ही मिले, शिशु देखकर विस्मित हुए,
'रे शिशु! कहाँ?' इतना कहा था शीघ्र आकर्षित हुए॥

रोमाञ्च हो आये सुवीणा भीग धारासे गयी,
गद्गद हुआ ऋषि-कण्ठ सहसा, वृत्तियाँ करुणामयी।
शिशुको उठा गोदी लिया तत्काल मुख-चुम्बन किया,
शैशव-सुघरतापर नहीं, किसका पिघलता है हिया?

फिर पूछने उससे लगे 'हे वत्स! जाता है कहाँ?
चल घर, वहींपर हैं परम प्यारे पिता-माता जहाँ।'
थे गोल-गोल कपोल उज्ज्वल विमल भोलापन लिये,
दृग थे बड़े अरविन्द-सम हरि-भक्तिमें उसने दिये॥

मस्तक ढका, कुछ-कुछ खुला था, नव-जटाओंसे रहा,
बालेन्दु मानो घिर सहज पतली घटाओंसे रहा।
सुन्दर शरीर मनोज-सा, कोमल विशद पादस्थली,
अति शुभ्र मुक्तामाल-सी रद-अवलि राजति है भली॥

'मैं पलभ प्यालेसे मिलूँ' अस्फुट यही उत्तर दिया,
मानो कमल-सम्पुट खिला सर सर्व सौरभमय किया।
'शिशु! धन्य तू' यह शब्द ऋषि-मुखसे निकल सहसा पड़े,
कुछ काल तनकी सुध भुलाये रह गये ऋषिवर खड़े॥

पातक-विनाशक हाथ शिशुके शीशपर फेरा जभी,
लेने परीक्षा, लोभ-भय-मय युक्तियाँ खेलीं सभी।
कहने लगे—'हे वत्स! तू जिस हेतु वनमें जा रहा,
मैं जानता हूँ वह सभी, जिस हेतु तू दुख पा रहा॥

ध्रुव! साथ चल मेरे तुझे साम्राज्य दिलवा दूँ सभी,
सिरपर मुकुट सम्राट्-पदका जो न धरवा दूँ अभी।
सम्मान तेरा पूर्ण जो मैं आज करवा दूँ नहीं,
विधि-सुत कहाना छोड़ दूँ, कहना मुझे साधू नहीं॥

भगवान्‌का मिलना कठिन उसका ठिकाना ही नहीं,
तुझसे अशक्त, अबोधको भगवान् पाना ही नहीं।
पाना कठिन जिसका, रिझाना तो विकट अति काम है,
किस वस्तुसे उसको रिझाये, वह निरा निष्काम है॥

दोहा

उसके पानेके लिये, पच-पच मरते सन्त।
पता न पाते हैं कहीं, हो जाता तप अन्त॥

ध्रुव! हो गया तू बावला हरिको रिझाने जा रहा,
तू मशककी ही भाँति नभकी थाह लाने जा रहा।
तू जा रहा किस ठौर है, किसने तुझे बहका दिया?
होते हुए राज्याधिकारी मार्ग क्यों वनका लिया?'

ऋषि-युक्तियोंने कुछ नहीं ध्रुव-चित्तको विचलित किया,
राज्यादि-लोभ-सुयुक्तियोंने और बढ़कर हित किया।
सब सुन रहा था कानसे, धुन और थी मनमें बसी,
कटि-बद्ध था प्रण-रत कठिन विश्वास-ग्रन्थी थी कसी॥

कहने लगा—'मिट जाउँगा, मिट जाउँगा, मिट जाउँगा,
जब तक न पाऊँगा उसे, वापिस न घरको आउँगा।
है लाज यह उसको कि उसके नामपर मिट जाउँगा,
हैं दुःख जितने विश्वके उनसे न मैं घबराउँगा॥

अब फिर न कहना, देखना प्रभु! क्या कहा यह आपने?
दर्शन कराये आपके, इस भक्ति-पुण्य-प्रतापने।
सम्राट्-पदका मुकुट भी सिरपर धराते आप हैं,
लो मार्गमें मिटने लगे मेरे सकल परिताप हैं!!

दोहा

सांसारिक सुख-भोग सब, भक्ति-मार्गकी धूल।
यह अनुभव मुझको हुआ, हरि जनके अनुकूल॥

लेकर परीक्षा तृप्त ऋषिवर हो गये आनन्दमय,
'तू धन्य है शिशु! प्राप्त होगी अब अवश्य तुझे विजय।
जो कुछ तुम्हारी जननिने उपदेश तुमको है दिया,
हितकर वही है सर्वथा, सत्पथ-पथिक तुमको किया॥

उसकी शरणमें जो गया वह दुःख पाया ही नहीं,
जो माँगने उससे गया, वह रिक्त आया ही नहीं।
एकाग्र मनसे ध्यान करना वत्स! उस भगवान्‌का,
मैं पथ बताता हूँ तुझे संयम-नियमका ध्यानका॥

मधुवन जहाँ बहती धवल-सलिला सुयमुना पावनी,
हरिके पदोंको धावनी, भव-पाप-पुञ्ज नसावनी।
उसके विमल जलमें नहाना शान्त होना सर्वथा,
तन, मन, वचनसे शुद्ध हो, एकान्त होना सर्वथा॥

करना मनोनिग्रह दृढ़ासन और प्राणायामसे,
मन जोड़ देना पुत्र! उस पूर्णेन्दु-मुख सुखधामसे।
सुन्दर सजल घनश्याम तनपर पीतपट लसते हुए,
अति लाल सुन्दर ओष्ठ, सित रद मन्दगति हँसते हुए॥

मृग-मद-तिलक मस्तक विलसता नासिका सुन्दर महा,
अति गोल-गोल कपोल ज्यों सौन्दर्यके सरवर अहा!
लम्बी सुचिक्कन घुंघराली श्याम अलकावलि तथा,
मणिमय मुकुट मणियुत फणिनियाँ शीशपर शोभित यथा॥

'द्विज-चरणका शुभ चिह्न है वर वक्षपर यों लस रहा,
मानो मयङ्क महान् नभके अङ्कमें है हँस रहा।
लम्बी भुजा शुभ चार जिनमें शंख, चक्र, गदा, कमल,
झलझल झलकती है हृदयपर मुक्तमाला अति अमल॥

केयूर, कङ्कण आदि कनकाभरण आभा-मय महा,
शुभ कण्ठमें कौस्तुभ सुमणिकी कान्ति अति अद्भुत अहा!
कौशेय पीताम्बर परम सुन्दर मनोहारी तथा,
काञ्चनमयी वर करधनीकी हैं लड़ें हरती व्यथा॥

भव-भय-हरण शुभचरण नख-मणि-मय अमित जिनकी प्रभा,
जिनका सतत है ध्यान करती सन्त, मुनिजनकी सभा।
पलभर न जब यह मूर्ति ध्यानीके हृदयसे दूर हो,
हे वत्स! अघ सब दूर, उर आनन्दमें भरपूर हो॥

दोहा

ध्यान कहो चाहे इसे, हरि आकर्षण-यन्त्र।
ध्यानावस्थित हो जपे, द्वादश अक्षर मन्त्र॥'
ध्यान-रीति सुनकर हुआ, ध्रुवको अति आह्लाद।
अनायास मगमें मिला, गुरु-उपदेश-प्रसाद॥

गुरुका अनुग्रह देखकर भर भक्तिसे आया हिया,
ऋषिने शुभाशीर्वाद हार्दिक प्रेमसे उसको दिया।
ध्रुव चल पड़ा उनसे विदा हो मधुपुरीका मग लिया,
नारद गये नृपके भवन उठ भूपने आदर किया॥

पूजन किया समुचित तथा सविनय उन्हें आसन दिया,
आदेश पाकर आप भी बैठे, परम दुःखित हिया।
देवर्पिने देखा कि नृपका चित्त आज उदास है,
मुखपर न ओज-विकास है, मानो मिला अति त्रास है॥

'राजन्! तुम्हारा मुख-कमल क्यों शुष्क इतना आज है?
डूबा तुम्हारा क्या अचानक धर्म-अर्थ जहाज है?'
उत्तानपाद नृपाल पश्चात्ताप-युत रोने लगे,
निज-कृत अनयकी कालिमा दृग-नीरसे धोने लगे॥

'मैं हूँ बड़ा ही निर्दयी, कामी, कुटिल, अनयी महा,
निज पञ्च वत्सर वत्स त्यागा मानकर तियका कहा।
क्या कुछ दशा होगी विपिनमें उस सुकोमल गातकी?
मुनिवर! कहो मैं क्या करूँ, मुझ-सा न कोई पातकी?'

दोहा

'राजन्! मत चिन्ता करो, रक्षक श्रीभगवान।
सर्व ठौर सब कालमें भक्तोंका कल्यान॥
ध्रुवके अमित प्रभावका, राजन्! तुम्हें न ज्ञान।
विश्व-व्याप्त सत्-कीर्ति-ध्रुव, होगा नृपति सुजान॥

देकर नृपतिको सान्त्वना देवर्षि तत्क्षण चल पड़े,
सुख-भोग सर्व विसार भूपति पुत्र-हित चिन्तित बड़े।
उस ओर पहुँचा मधुपुरी वह भक्त अलबेला अहा!
भगवच्चरण-पङ्कज-भ्रमर दृढ़-भक्ति-सरितामें बहा॥

कालिन्दि पावन कूल सात्विक दृश्य रम्य सुहावना,
कोमल, हरित तृण-अङ्कुरोंका है जहाँ आसन बना।
होकर दृढ़ासन ध्रुव वहाँ हरिका भजन करने लगा,
त्रै-त्रै दिवस पश्चात् फल खा निज उदर भरने लगा॥

तजकर फलाशन, शुष्क-दल सप्ताहमें खाने लगा,
यों मास दूजा भी कठिन उपवासमय जाने लगा।
त्रैमास लगते ही अहो! केवल जलाहारी बना,
सो भी नवाह्निक, रातदिन हरि-ध्यानमें मन है सना॥

तन सूखकर काँटा हुआ, जपता सतत शुभ मन्त्र है,
हरिके निबन्धनका अहो! यह मन्त्र है या यन्त्र है?
जलपान चौथे मास तक केवल पवनपर तन रहा,
द्वादश दिवस पश्चात् अहह! असु-निरोध* किया महा॥

दोहा

एक चरण-आधारसे, खड़ा अचल निष्पाप।
मन-चकोर हरि-चन्द्रमें, अविरल अन्तर्जाप॥

हरि-रूप-जल-गत मीन-वत् मन लीन प्राणायामसे,
यों पाँचवें महिने हुआ सम्बन्ध ब्रह्म अकामसे।
अब ब्रह्मका साक्षात् अविरत ध्यान उरमें हो रहा,
सन्तत सुखद अति शान्ति-प्रद सुज्ञान उरमें हो रहा॥

---

* प्राण वायुका रोकना

जैसे जननिके गर्भ-गत है वत्स रस पाता सभी,
त्यों ब्रह्म-गत मुनि ब्रह्म-रस पी शान्त हो जाता जभी।
अब देह उसका ब्रह्म-रसके ही सहारे है खड़ा,
अत्यन्त तपसे भाल तेजोमय हुआ उसका बड़ा॥

थी तो प्रथम ही धार पैनी सानपर फिर चढ़ गयी,
असि शूरके करमें गयी, छबि सौगुणी हो बढ़ गयी।
उसके तपोबलसे तमोगुण नाम लेनेको नहीं,—
मिलता तपस्थलिमें कहीं, लख शान्ति पड़ती सब कहीं॥

चुपचाप तरुवर हैं खड़े कोमल कुसुम धारे हुए,
ध्रुव पूजनेको हैं खड़े मानो सु-रखवारे हुए।
रवि ढल गया पर वृक्ष निज छाया न तजना चाहते,
ध्रुव-साथ मिटना चाहते वे ईश भजना चाहते॥

दोहा

खगगण कलरवसे यथा, करते हरि-गुण-गान।
मृगी-व्याघ्रिणी एक सँग, करती हैं जलपान॥

आसक्ति भँवरोंमें रही अब वह प्रथम-सी है नहीं,
रस-गन्ध-लोलुप-गुनगुनाहट अब न सुन पड़ती कहीं।
है कर गयी पूजा वन-श्री नारि वीर वसन्तकी,
हरि-ध्यान-रत एकाग्र-मन उस शान्त बालक सन्तकी॥

उसके विमल तनपर स्व-पलकें स्नेहकी धर-धर गयीं,
कितनी निशाएँ ओसके मिस अश्रु-सिञ्चन कर गयीं।
रविने स्वकर-माला-अँगोछेसे वदन निर्मल किया,
नभने, दिशाओंने समीरण छोड़ तन शीतल किया॥

इस नव अवस्थाकी तपस्या देखकर इतनी कड़ी,
मानो द्रवित होकर तपस्या अङ्क भरनेको खड़ी।
तन, मन, विपिनमें शान्तिका साम्राज्य लख पड़ता अहा!
मानो स्वयं ही शान्तरस शिशु-रूपमें तप कर रहा॥

ध्रुवने स्व-आत्मा लीन जब परमातमामें कर दिया,
व्याकुल चराचर हो उठा, जब प्राण आकर्षण किया।
दिग्गज लगे डुलने, महासागर उबलने लग गये,
व्याकुल हुए भयभीत विषधर विष उगलने लग गये॥

दोहा

लोकपाल पीड़ित हुए, चिन्तित सुर-समुदाय।
इस अकालकी प्रलयमें, हरि बिन कौन सहाय॥
गये भगे हरिके निकट, भगवन्! निकले प्राण।
कारण जानें आप ही, करिये सत्वर त्राण॥

भगवान् बोले 'त्रिदशगण! कुछ बात चिन्ताकी नहीं,
मैं प्राण रुकनेका तुम्हें कारण बताता हूँ सही।
मुझ सङ्गतात्मा एक बालक है तपस्या कर रहा,
है उग्र तापस यह उसीने प्राण-रोध किया महा॥

मुझ-मय हुआ वह इसलिये यह रुद्ध-असु संसार है,
मैं जा रहा उसके निकट इसका यही उपचार है।'
मैत्रेय बोले 'हे विदुर ! सुनकर सुरोंकी मण्डली,
निर्भय हुई हर्षित हुई हरि-वन्दना कर घर चली॥

तत्काल हरि विहगेश पर चढ़कर चले हँसते हुए,
विहगेश-छायासे नशे मग-पाप-पुर बसते हुए।
हरियान-पक्षोंकी पवनसे विश्व-अघ-दीपक बुझे,
सुन सामवैदिक गान ऋषि-मुनि सर्व गद्गद गल रुझे॥

ध्रुव था जहाँ, पहुँचे वहाँ, सम्मुख हुए जाकर खड़े,
ध्रुव-उग्र तप-तरुके अचानक पक्व फल आकर पड़े।
हरि-रति-लताकी मूलमें था अश्रु-जल सिञ्चन किया,
सफलित हुई है आज वह दुर्लभ परम फल पा लिया॥

दोहा

ध्रुवके अन्तर्ध्यानसे, सहसा अन्तर्द्धान।
नेत्र खोल देखे वही, सन्मुख स्थित भगवान॥
ध्रुवने झट हरिको किया, वसुधा पसर प्रणाम।
मुखसे वचन न निकलते, प्रेम-पूर्ण उर-धाम॥

हरिके समक्ष खड़ा हुआ इस भाँति वह शोभित हुआ,
मानो चकोर विलोकता विधु-रूप-रस लोभित हुआ।
मानो तृषित चातक सजल-घनको विलोकन कर रहा,
हरिरूप कुसुमित वृक्षका क्या पुष्प यह सुन्दर महा ?

भगवानने ध्रुवको विलोका प्रेम-दृष्टि प्रसारके,
ध्रुव रो उठा तत्काल ही भगवान-ओर निहारके।
वह चाहता करना विनय पर बोल आता है नहीं,
पल-पल विवश, विह्वल, विकल कुछ मार्ग पाता है नहीं॥

भगवानसे जनके हृदयके भाव छिपते हैं भला?
बिन भाव चाहे रात-दिन फाड़ा करो कोई गला।
भगवान सुनते ही नहीं जो भाव-मिश्रित स्वर नहीं,
स्वर हो न हो, उर भाव हो, हरि आ टिकें सत्वर वहीं॥

श्रुति-सार-रूप निज शंख हरिने शिशु-कपोलोंसे छुआ,
हरिके अनुग्रहसे विनयका ज्ञान सब ध्रुवको हुआ।
गद्गद हुआ जिस काल वह हरि-प्रार्थना करने लगा,
अविरल, विमल, पावन सलिल निर्झर यथा झरने लगा॥

'हे करुणाब्धि! भवाब्धिके, कर्णधार सुखधाम।
विश्व-वाटिकाके चतुर माली! तुम्हें प्रणाम॥

दुर्मिल छन्द

मुनि-मंडल-मानस-पङ्कज-भौंर! विभो! भगवान! प्रणाम तुम्हें,
सुर-पुञ्ज-सुपङ्कज-सूर! प्रभो! गुण-ज्ञान-निधान! प्रणाम तुम्हें।
भव-पातक-पुञ्ज-महा-तम-नाशक-भानु! सुजान! प्रणाम तुम्हें,
त्रयताप-कुआतप-नीरद! नेह-महाजलवान्! प्रणाम तुम्हें॥

अपने जनकी अति अल्प प्रदानित वस्तु महाअनुमान तुम्हें,
अभिमान-समेत सुमेरु प्रदानित लागत धूलि-समान तुम्हें।
अति विस्मित मैं इतने लघु-से तपसे शुभ दर्शन आन दिया,
किस भाँति करूँ विनती प्रभुकी विधिने मुख एक प्रदान किया॥

शिव शारद नारद शेष सदा गुणगान किया करते प्रभुका,
मिलता न गुणोंका पार कहीं, नित ध्यान किया करते विभुका।
अपने जनपै जब हो ढरते, हरते अविवेक-महा-रजनी,
जिसके सिर हाथ धरा तुमने, उसकी बिगड़ी सब बात बनी॥

जलमें, थलमें, वसुधातलमें, गगनाञ्चलमें यह मूर्ति छिपी,
मिलती न कहीं वह ठौर जहाँ यह हो न मनोहर मूर्ति चिपी।
जगदीश! यही अभिलाष सदा, तव भक्त-समूह सुसंग करूँ,
मन मीन करूँ छविके जलमें, गुण-गान-स्वचित्त कुरंग करूँ॥

दोहा

अद्भुत माया आपकी, मिलता वार न पार।
अन्ध किया संसार यह, मोहक अञ्जन डार॥
हरिकी माया वाहिनी, वहा रही संसार।
वही उबरे जो रहे, पद-बोहित आधार॥'

ध्रुवकी विनय-वाणी श्रवणकर हरि परम हर्षित हुए,
अरविन्द-दृग, सुस्मित वदन, सुन्दर परम दर्शित हुए।
कहने लगे 'हे राजसुत! तुमने प्रसन्न किया मुझे,
मुझको रिझानेके लिये निज चित्त-वित्त दिया मुझे॥

मैंने तुम्हें वह पद दिया जो आजतक दुर्लभ रहा,
जिसको भटकते हैं सदा सुरगण तथा ऋषि-मुनि महा।
ध्रुव-लोककी रवि-शशि, ग्रहादिक, तारिका-माला तथा,
देते सदैव परिक्रमा, वृष मेढ़में जुतकर यथा॥

तुम राज्यके सुख-भोग भोगोगे महा इस लोकमें,
वनमें तजेगी तन सुरुचि निज पुत्रके अति शोकमें।
'उत्तम' विपिनमें यक्षगणसे युद्धकर मर जायगा,
ध्रुव लोक जानेसे प्रथम अति 'यक्ष तू कर जायगा॥

ध्रुव! राज्य-सुख-भोगादिमें भी मम न विस्मृति हो तुझे,
मम भक्तिके कारण अचल संप्राप्त सद्गति हो तुझे।
ध्रुव-लोकमें सब लोक निज मस्तक नवावेंगे तुझे,
उस ठौर कोई ताप भी ढूँढ़े न पावेंगे तुझे॥'

दोहा

यों कह बैठे, गरुड़पर, गरुड़ध्वज भगवान।
ली उड़ान खगराजने, गति अति पवन-समान॥

श्रीहरि गये निज लोक ध्रुवकी पूर्ण कर सब कामना,
ध्रुव उठ चला निज गेहको कुछ खेद-सा मनमें बना।
ध्रुवने विचार किया; 'अहो! मैंने बड़ी यह भूल की,
की कामना संसार-सुखकी, पा कृपा सुख-मूलकी॥

भगवान अपने भक्तकी सब कामना पूरित करें,
सब काल, सब ही ठौर, सब ही भाँति जनका हित करें।
संसारके सुख-भोग अस्थिर हैं अशान्ति भरे हुए,
पीयूष-मुख गोमय भरे भव-भोग-कुम्भ धरे हुए॥

देखो कृपा भगवानकी किस भाँति मेरा हित किया,
चारों पदार्थ मिला हुआ वरदान है मुझको दिया।
भव-भोग हरिसे, कल्पतरुसे है चनेका याचना,
हरिकी कृपा दूरित करे आवागमनका नाचना॥

संसारके भावी जनो! हरिसे न तुम कुछ माँगना,
माँगे बिना भी हरि तुम्हें देंगे जगतका सुख घना।
है भक्तका यह धर्म हरिकी चित्तसे सेवा करे,
भगवान उसकी आप ही फिर पार तन-खेवा करे॥"

दोहा

हरि अनुकम्पा सोचता, जाता है ध्रुव भक्त।
चारों फल कर प्राप्त वह, हरि-पद-पद्मासक्त॥
उधर सुध लगी भूपको, आता है ध्रुव धीर।
उरकी जलती आगपर, मानों बरसा नीर॥

जिस काल ध्रुवके आगमनकी सुध्र लगी भूपालको,
शुभ रत्नकी राशी मिली मानों महा कंगालको।
गत-प्राण मानों इन्द्रियोंमें प्राण-ज्योति जगी महा,
डिगती हुई काया-कुटीके रोक-थाम लगी अहा॥

यह भूपको जिसने महा संवाद था आकर दिया,
निज कण्ठका मणि-हार नृपने झट उसे अर्पित किया।
अत्यन्त सुन्दर स्वर्ण-रथपर भूप आरोहित हुए,
नृप-संगमें मन्त्री, महाजन, विप्र सुपुरोहित हुए॥

वर वेणु, दुन्दुभि शंख आदिक वाद्य वर बजते हुए,
पुरसे चले सब लोग मनका शोक सब तजते हुए।
अति दिव्य कनकाभरण-सज्जित रानियाँ दोनों चलीं,
'उत्तम' लिये सँग पालकीमें सोहती दोनों भलीं॥

अति दूरसे आता हुआ ध्रुवको विलोका भूपने,
रथसे उतर पैदल भगे सुत-स्नेहमें भूपति सने।
हरि-भक्ति-कारण विश्व-बन्धन-मुक्त सुत देखा तथा,
सुख आत्मदर्शन-सा हुआ, मुख मुकुरमें देखा यथा॥

दोहा

दोनों बाहु पसार कर, हो विह्वल बेहाल।
छातीसे लिपटा लिया, भूपतिने प्रिय बाल॥

नृपने स्वसुतके शीशको दृग-नीर-सींच भिगो दिया,
हरि-भक्त सुतसे तन परस कर धन्य अपनेको किया।
आदर्श अमलान्तःकरण ध्रुवने पिताके पद छुए,
नृपने सुआशीर्वाद प्रिय सुतको दिया गद्गद हुए॥

ध्रुवने पुनः निज जननिको श्रद्धासहित वन्दन किया,
उस काल रानी सुरुचिका भर प्रेमसे आया हिया।
है प्रेम भी अत्यन्त उरमें निज वचनका खेद है,
अब तो न उत्तम और ध्रुवमें रह गया कुछ भेद है॥

सच है अहो! जिसपर कृपा भगवानकी होती जभी,
संसारकी भी बस अहो! उसपर कृपा होती तभी।
अब भी यही तो है वही ध्रुव और यह रानी वही,
देखो कृपा भगवानकी किस भाँति है सकुचा रही॥

ध्रुवको सु-आशीर्वाद रानीने दिया सद्भावसे,
सच है जगतमें मूल्य पाता स्वर्ण वह्निक तावसे।
छेदा गया दुर्वाक्य-छीनीसे कनक टुकड़ा नया,
नारद-कसौटीपर चढ़ा तप-अग्निमें ताया गया॥

दोहा

तबसे कीमत पा गया, पड़ा जौंहरी हाथ।
सबका गल-भूषण बना, होकर आज सनाथ॥
आज सुनीतीका हृदय, है आनन्द-निमग्न।
धन्य दिवस यह आजका, धन्य धन्य यह लग्न॥

अति भक्ति-युत निज जननिको ध्रुवने नमन शिरसे किया,
ध्रुव-जननिका सत्प्रेम-युत प्रमुदित हुआ तत्क्षण हिया।
सुतको उठा गोदी लिया, मुख-चन्द्रका चुम्बन किया,
जलती हृदयकी आगपर दृग-नीरका सिंचन किया॥

युगलस्तनोंसे प्रेम-वश अविरल पयोधारा छुटीं,
सत्प्रेमकी उर-वृत्तियाँ मानों घटा बन कर जुटीं।
ध्रुवको धरे निज अङ्कमें रानी सुशोभित है तथा,
हरि-भक्तिकी शुभ गोदमें सुविवेक हो शोभित यथा॥

ध्रुव और उत्तमका मिलन अत्यन्त ही शोभित रहा,
मानों अरुण-युग नव कमल सरमें सुशोभित हैं महा।
सद्धर्म और सदर्थ मानों कण्ठ लग लग मिल रहे,
मानों सुयश, सत्कर्मरूपी दो कमल हैं खिल रहे॥

बाजे विपुल हैं बज रहे उत्साह नृत्य दिखा रहा,
पुरवासियोंका प्रेम-नद जय-युक्त उभला जा रहा।
ध्रुव और उत्तमके लिये हथिनी सुसज्जित की गयी,
शुभ चिन्ह-चिन्हित स्वर्ण-भूषण युक्त अति शोभामयी॥

दोहा

बैठे हस्तिनि पर हुए, शोभित यों युग बाल।
मानो जंगम शैलपर, शोभित युगल मराल॥

जय-नाद युत तत्काल ही पुर ओर सब नर-वर चले,
सुरपति-सहित सुरवृन्द-से वे हो रहे शोभित भले।
पुरके प्रसादोंकी छटा अति दूरसे मन मोहतीं,
हिलती हुई जिनपर पताकाएँ बहुत ही सोहतीं॥

मानों पुरी ध्रुव देखनेको उत्सुका होकर बड़ी,
सत्वर बुलानेके लिये है दे रही झाले खड़ी।
पुर-द्वार अति शोभित हरित तृण, वेलि, फूलोंसे सजा,
फहरा रही जिसपर विमल यश-मय परम सुन्दर ध्वजा॥

प्रत्येक घरका द्वार बन्दनवारसे है सज रहा,
कदली, कुसुममालादिकी है मांगलिक शोभा महा।
जल-पूर्ण कलसोंपर प्रदीपोंकी परम अद्भुत छटा,
गाती हुई शुभ नारियोंसे हो रही शोभित अटा॥

पुर-नारियाँ ध्रुवपर दही, जल, दूब, अक्षत डालतीं,
दे-दे सुआशीर्वाद मनकी हैं उमंग निकालतीं।
सब ठौर अति आनन्दयुत होता सुमंगल गान है,
मानों पुरीने आज पायी जान और जबान है॥

दोहा

बहुबिधि सज्जित महलमें, ध्रुवने किया प्रवेश।
सुतने सार्थक कर दिया, माताका उपदेश॥
राजाने कुछ कालमें, ध्रुवको सौंपा राज्य।
गया विपिनमें भजन हित, जगत समझकर त्याज्य॥
धन्य धन्य ध्रुव धन्य तू, ध्रुव-माता तू धन्य।
सफल कोख तेरी हुई, जन कर भक्त अनन्य॥

भगवान् नृसिंहकी गोदमें भक्त-प्रह्लाद

प्रह्लाद

दोहा

सरस कथा प्रह्लादकी, सुनिये नृपति सुजान ।
हरि-पद-रति, भव-विरति-प्रद, करन सहज कल्यान ॥
कोटि, कवच निष्फल सकल, सफल सहज हरि-ओट ।
दैव, शत्रु, यमकी जहाँ, होती निष्फल चोट ॥

बाराहका अवतार धर, हरिने हता हिरण्याक्ष था,
समशील हिरनाकुश, सहोदर यह उसीका है तथा ।
निज भ्रातृ-बधका वैर लेनेके लिये अति तप किया,
सन्तुष्ट हो, विधिने मनोवाञ्छित उसे शुभ वर दिया ॥

था तो प्रथम ही यह प्रबल फिर श्रेष्ठ वरका बल मिला,
मानो भयानक भुजगको अति तीक्ष्ण हालाहल मिला ।
इस पङ्कसे प्रकटित हुआ प्रह्लाद-पङ्कज अति भला,
निज कुल-सरोवर सौरभित कर सर्वथा, अघ-दल दला ॥

जननी-जठरमें ही जिसे हरि-भक्तिकी संथा मिली,
देवर्षि नारदसे अहा ! उर-कञ्जकी कलियाँ खिली ।
जननी-जठरकी म्यानसे तलवार यह तीखी कढ़ी,
हरि-भक्तिरूपी सानपर नारद सुशिल्पीसे चढ़ी ॥

यह वार कर्तापर पड़े इसकी अनोखी धार है,
अब देखना असुरेश इससे आप खाता मार है।
जब हो गया प्रहलाद पढ़ने योग्य भूपतिने जभी,
गुरुके निकट भेजा कि यह विद्या पढ़े अपनी सभी॥

दोहा

संडा-मर्कको बुला, समझा दी सब बात।
रीति, नीति विद्या इसे, सिखलाओ दिन रात॥

प्रह्लादको गुरु ले गये, जाकर पढ़ाने लग गये,
शुभ शिष्य पाकर आज मानो भाग्य गुरुके जग गये।
होकर मुदित अति स्नेहसे गुरु जो बताता था उसे,
तत्काल वह देता सुना मानो कि आता था उसे॥

गुरुके हृदय आनन्दकी सीमा न रहती थी अहा!
सत् शिष्य पाकर किस नहीं गुरुको खुशी होती महा?
गुरुसे पढ़ा निज पाठ वह जाकर सुनाता तातको,
सुनकर न नृप उरमें समाता, भूल जाता गातको॥

प्रिय पुत्रकी ही प्राप्ति पूरे पुण्यका परिणाम है,
फिर पुत्र हो मतिमान वह तो वंश ही यशधाम है।
मतिमान हो, नयवान हो, विद्वान हो, धनवान हो,
हैं व्यर्थ ये वैभव सकल उरमें न जो भगवान हो॥

उस पुत्रको, उस गेहको, उस वंशको सुप्रणाम है,
हरि-भक्त जन्मे जब जहाँ, पावन परम वह ग्राम है।
प्रहलादकी मति शुद्धताके साथ ही अति तीव्र थी,
सन्मार्गकी बातें स्वयं वह ग्रहण करती शीघ्र थी॥

दोहा

अब गुरु-वाक्योंको हुआ, चिकना घट, उर-धाम।
जो सिखलाते गुरु उसे, सब लगते बेकाम॥
चेलेका पथ और है, गुरुका मत है और।
एक बाट कैसे चलें, साहुकार औ चोर?

गुरु तो सिखाते नीति सांसारिक, भरी जो भेदकी,
प्रह्लादके उरमें अहो! वे हेतु बनतीं खेदकी।
प्रह्लाद रोता चित्तमें यह क्या सिखाते हैं मुझे,
संसारमें ही भटकनेका मग दिखाते हैं मुझे॥

इनके वचनमें मैं कहीं सुनता न हरिका नाम हूँ,
है यह कथा नीरस निरी, मैं सुन रहा बेकाम हूँ।
उठ घर चला वह एक दिन गुरुजी वहीं बैठे रहे,
नृप-सुत समझ, गुरुने वचन उसको नहीं कुछ भी कहे॥

घरपर गये प्रहलादको असुरेशने गोदी लिया,
बोले कि 'बतला पुत्र! तूने स्मरण क्या-क्या है किया।'
प्रह्लाद बोला 'हे पिता! मैं और मेरा यह वृथा,
छल-छद्म, चिन्ता त्यागकर सुनना सुखद हरिकी कथा॥

गुरुजी बड़े विद्वान् हैं, फिर भी न हरिको जानते,
आश्चर्य है, पण्डित कहाकर तनु अमर हैं मानते।
हे तात! मैं समझा यही हरि-नाम सुखका धाम है,
जपता न जो इस नामको पाता न वह विश्राम है॥'

सुनकर वचन प्रह्लादके असुरेश विस्मित हो गया,
'यह क्या हुआ? इसकी अचानक कौन मतिको खो गया?'
यह संगका फल है सभी, यों सोचकर नृपने जभी,
की झट व्यवस्था, वह कुसङ्ग न पा सके अब फिर कभी॥

दोहा

गुरुको यों समझा दिया, रखना इसका ध्यान।
कहीं कुसङ्ग न पा सके, हो जावे अज्ञान॥
तुम अपने उपदेशसे, इसे करो विद्वान।
हो जावे इसको सकल, राजनीतिका ज्ञान॥

गुरुने कहा—'हाँ जी! इसे सन्मार्गपर लाऊँ अभी,
चौंसठ कला, चौदह सुविद्या नीति सिखलाऊँ सभी।
कहकर वचन यों भूपसे, गुरुजी उसे सँग ले चले,
उस राजसी ही अन्नसे तो थे गुरुजी भी पले॥

प्रह्लादको अति प्रेमसे गुरुने कहा जाकर वहाँ,
'हे वत्स! तू सच्ची बता दुर्बुद्धि यह पायी कहाँ?'
प्रह्लाद बोला 'हे गुरो! किसको सिखाता कौन है?
संसारमें संस्कारकी सबसे प्रबलतर पौन है॥

'अपना' 'पराया' है असत् यह खेल मायाका कड़ा,
जग देखता सत्को नहीं अज्ञानका पर्दा पड़ा।
भगवानकी ही जब कृपा इस जीवपर होती बड़ी,
यह भेद-मति सब दूर होती, शृंखला कटती कड़ी॥

उल्टा दिखाता है सकल अज्ञानका चश्मा बड़ा,
मैं आपको विपरीत पथपर दीखता तब ही खड़ा।'
गुरुने कहा—'रे दुष्ट! मुझको कह रहा 'अज्ञान' है,
दुर्बुद्धि! यह तूने किया मेरा बड़ा अपमान है॥

दोहा

है कोई बालक यहाँ, लाना मेरी बैंत।
सिरपर चढ़ता ही गया, करता दिन-दिन ऐंत॥'

ले बैंत गुरुने क्रोधसे दो-चार दी उसके जमा,
फिर बड़बड़ाते ही रहे जब तक नहीं गुस्सा थमा।
प्रह्लाद बोला—'हे गुरो! मम प्राण चाहे लीजिये,
पर पेट पापीके लिये अन्याय यों मत कीजिये॥

हैं आप गुरु-पदपर प्रतिष्ठित, यह तुम्हें फबती नहीं,
भगवानकी महिमा भुलाना धर्मसङ्गत है कहीं?
जो है त्रिलोकीनाथ, दीनानाथ, सब विधि ध्येय है,
गाया गया जो वेदमें सबको वही तो गेय है॥

उस पाप-नाशकको भुलानेसे न बढ़कर पाप है,
इस पापसे ही जीव यह पाता महा-त्रैताप है।
मैं सत्य कहता हूँ गुरो ! विद्या वही है सुखकरी,
उसका बतावे पथ, कथा उसकी सुनाये रस-भरी॥

सब सृष्टिमें सत्ता भरी उस एक सत्तावानकी,
बतला रही उसका पता है यह प्रकृति भगवानकी।
है कौन-सी वह ठौर जिसमें वह पतितपावन नहीं?
मैं देखता हूँ हे गुरो! वह रम रहा है सब कहीं॥

दोहा

जलमें, थलमें, गगनमें, अनिल अनलके बीच।
रवि, शशिमें उस एककी, तपन, सुधाकी सींच॥'
बोल बन्द गुरुके हुए, सुनकर वचन अमोल।
अंतःपुरसे हट गया, विद्या-मदका झोल॥

पर लोभ-भय-वश स्थिर न उसका चित्त उज्ज्वल रह सका,
तत्काल ही अज्ञानने अन्तःकरण उसका ढका।
गुरुने लखा, है लग्न इसके चित्तमें सच्ची लगी,
इसको बुझाना है कठिन जो आग यह उरमें जगी॥
यों सोचकर प्रहलादको रणवासमें भेजा जभी,
प्रहलादकी माने उसे सुस्नान करवाया तभी।
सुन्दर वसन भूषण पिन्हा भोजन कराया प्रेमसे,
तत्काल ही नृपके निकट सुतको पठाया क्षेमसे॥

आता हुआ देखा कुँवर असुरेश अति प्रमुदित हुआ,
सागर उमड़ता है यथा लख चन्द्रको समुदित हुआ।
दोनों पसारे हाथ नृपने दूरसे उसके लिये,
वह प्रेमसे गोदी चढ़ा, हरिको हृदय धारण किये॥

बोले कि 'बेटा! आजतक क्या-क्या पढ़ा तू यह बता',
बोला कि, 'मैंने जान ली संसारकी निस्सारता।
गुण श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, चरण-सेवन, वन्दना,
रख दास्य, मैत्री-भाव हरिमें, आत्म-सर्वस अर्पना॥

दोहा

यह नवधा हरि-भक्ति है, तटिनी पाप-पँवाल।
पिता! यही सबसे सुखद, नाशिनि क्लेश कराल॥
भक्ति मध्य विद्या सभी, विद्यामें धन मान।
धनमें बसते धर्म सुख, अशन, वसन, मख, दान॥'

निज शत्रुका गुण-गान सुन तनमें अनल-सी लग गयी,
वह पुत्रवाली मोह-ममता एक ही सँग भग गयी।
वह गोदमें बैठा हुआ अंगार-सा लगने लगा,
यह पुत्र होकर भी अहो! मम शत्रुके रँगमें रँगा॥

कण्टक प्रखर उसको समझकर फैंक गोदीसे दिया,
बस, उस दयामयने तभीसे है उसे गोदी लिया!
इस बापने त्यागा, भला वह बाप कैसे त्याग दे?
हे बाप! तू अपना हमें प्रहलाद-सा अनुराग दे॥

असुरेश बोला—'दुष्टको कितना पढ़ाया फिर वही,
मेरे हृदयको दाहनेवाली कथा छोड़ी नहीं!'
गुरुसे कहा—'दुर्मति! तुझे रोया जभी था मैं घना,
वह सब विपिन-रोदन हुआ, तुझसे न मेरा हित बना॥

मैंने बताया क्या अरे! तूने पढ़ाया क्या इसे?
रे! वैद्य ही जब यम बने, रोगी भला रोये किसे?
अबतक समझता मैं रहा, मेरे हितैषी तुम घने,
भ्रममें रहा मैं, तुम अहो! मेरे अहितको ही बने॥'

दोहा

'मुझे दोष मत दीजिये, राजन्! मैं निर्दोष।
इसकी मति यह जन्मसे, तजिये मुझसे रोष॥
क्या क्या यत्न किये नहीं, इसे सिखावन हेत।
इसमें कुछ जमता नहीं, है यह ऊसर खेत॥'

प्रह्लादसे पूछा कि, 'क्यों रे! यह कुमति पायी कहाँ?
मम शत्रुके गुण-गानकी ध्वनि चित्त यह भायी कहाँ?'
प्रह्लाद बोला—'हे पिता संसारियोंका मन कभी—
लगता न ज्यों हरिमें, न जगमें त्यों लगे मम तनिक भी॥

संसारकी बातें उन्हें हैं याद हो जाती घनी,
हरिको नहीं वे जानते, मति है कुविषयोंमें सनी।
जो हैं न हरि-पद-पद्मकी रजको स्व-सिरपर धारते,
मैं तो कहूँगा यह कि, वे जगमें वृथा झख मारते॥

हरि-सा दयामय दुःखहर्ता दूसरा कोई नहीं,
उसके पदोंमें जो नमे, क्या कष्ट वह पाये कहीं?'
नृप पीसकर निज दाँत उसकी ओर लपका क्रोधसे,
धक्का दिया अति ज़ोरसे उन्मत्त हो दुर्बोधसे॥

बोला कि, 'कुल-अंगार मेरे सामनेसे दूर हो,
यह बात कह-कह कर न मुझसे व्यर्थ चकनाचूर हो।
इसको हटाओ सामनेसे यह कहीं मर जायगा,
मेरी प्रबल क्रोधाग्निमें इसका निशान न पायगा॥

दोहा

जाओ, गुरुसुत! तुम इसे, फिरसे दो उपदेश।
अबके जो माने नहीं, लाना धरकर केश॥
देखूँगा बस मैं तभी, इसका दीनदयाल।
आकर रक्खेगा इसे, जब उधड़ेगी खाल॥'

प्रह्लाद साधे मौन है, कुछ भी न मुखसे बोलता,
सङ्कट-तुलामें आज अपने आपको है तोलता।
गुरुने पकड़कर हाथ उसका शीघ्र निज आगे किया,
ले पाठशालामें गये; निज सामने स्थित कर लिया॥

बहु भीतिसे, सत्प्रेमसे सब भाँति समझाया उसे,
पर उन निरी नीरस कथाओंमें न कुछ पाया उसे।
समझा-बुझा सब भाँति, गुरु गृह-कार्यमें जाकर लगे;
उसने किये एकत्र बालक, भाग्य थे जिनके जगे॥

आतङ्क था उसका न कम, वह राज-सुत था, योग्य था,
सबको बिठाये सामने शोभित हुआ, शासक यथा।
तारागणोंके मध्य मानो चन्द्रमा है सोहता,
नव राजहंस, बकावलीमें है यथा मन मोहता॥

कर दूँ न क्यों कल्याण इनका, ये सखा मेरे सभी?
इनको सुधाका पान करवा दूँ, न विष खायें कभी।
संसार-सागरसे इन्हें मैं पार होना दूँ बता,
अक्षय सुखोंके कोषका इनको बता दूँ मैं पता॥

दोहा

यों कर पर-हित-कामना, भक्तराज प्रह्लाद।
छात्रोंको देने लगा, शिक्षा परम-प्रसाद॥
सुनिये राजन्! प्रेमसे, वचनरूप कल्याण।
भक्तराजके वचन ये, हैं सम्मान्य प्रमाण॥

'प्रिय मित्रगण! संसारमें यदि सार है तो है यही,
तन, मन, वचनसे विश्वकी सेवा करे संतत सही।
मन विश्व-पतिमें दे लगा तन विश्व-सेवामें तथा,
पावन करे अपनी गिरा हरिनाम-जप कर सर्वथा॥

यदि प्राण भी जायें, भले जायें, नहीं मिथ्या कहे,
बस, सत्यपर ही मर मिटे, नाना दुखोंके शर सहे।
ज्वाला कभी भी सत्यवादीको जला सकती नहीं,
रहता जहाँपर सत्य है, भगवान भी रहते वहीं॥

हे बालको ! इस विश्वमें क्यों जीव सब दुख पा रहे ?
रखते न सत्‌की ढाल हैं ये मार जब ही खा रहे।
संसार-वनमें छः * लुटेरे फिर रहे दिन-रात हैं,
जाने न कितने प्राणियोंका कर चुके ये घात हैं॥

बटमार हैं, ठग हैं, लुटेरे हैं, दिखाऊ मित्र हैं,
सर्वस्व हरनेके लिये सुखके दिखाते चित्र हैं।
इनसे बचे—इनका नहीं विश्वास सपनेमें करे,
हैं ये भयङ्कर मित्र, इनके पास आनेसे डरे॥

दोहा

विश्व-विपिनमें दी लगा, इन छःओंने आग।
बचते विरले जीव हैं, हरि-सागरमें भाग॥

ऐसे फँसे हैं जीव इनमें, भूल श्रीहरिको गये,
खाते दुखोंकी मार, माया ठाठ फिर ठठते नये।
ज्यों-ज्यों दुखोंके शर लगें, त्यों-त्यों उधरको ही भगें,
हरि-ओर करते मुख नहीं, सामान ज्यों सुखके जगें॥

हरिकी तनिक ही झाल सारे दुख बहा लेती जभी,
हरि-सिन्धु-तटकी सूखती जिनकी नहीं खेती कभी।
संसार यह समरस्थली है, काल-रिपु सिरपर खड़ा,
डरता नहीं है वार खांडेका जिधर जिसपर पड़ा॥

---

* काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और मत्सर।

हरि-भक्त सत्य महारथी करते निरन्तर सामना,
उत्साह भरकर सौगुना, तजकर विषय-भय-कामना।
संयम-नियम रथ-चक्र दो, हरि-रति-धुरी दृढ़तर पड़ी,
जूआ कड़ा हरि-ध्यानका, गुण-गानकी घण्टी बड़ी।

रथ-छत्र अतिशय प्रेमका तिसपर पताका पावनी,
पावन हरि-ध्वज नाम रथ, शोभा बनी जिसकी घनी।
इस विधि बनाकर रथ महा दृढ़, अश्व द्रुत-गति जोड़ते,
सद्धर्म औ शुभ-कर्मके हरिनाम शर फिर छोड़ते॥

दोहा

काल-शत्रुको सहज यों, हरिजन लेते जीत।
दुख पाते वे रात-दिन, जो हरिसे विपरीत॥

हे दैत्यबालक-वृन्द ! हरिको भूलकर भूलो नहीं,
हरि दीखते तो हैं नहीं पर हैं समाये सब कहीं।
तुम यह न जानो, हम बिना देखे उसे कैसे भजें ?
वह भी हमें वैसे भजे, हम हैं उसे जैसे भजें॥

है वह दयाका सिन्धु, थोड़ा भी घना कर मानता,
वह ईश अन्तर्यामि है सबके हृदयकी जानता।
सामान क्या कुछ चाहिये उसको रिझानेके लिये ?
आँसू बहाने चाहिये, उसको बुलानेके लिये॥

आकारसे वह रहित भी साकार बन जाता जभी,
निज भक्तके सङ्कट-हरणको भागकर आता तभी।
हरि तो नचाते विश्वको, हरिको नचाते भक्त हैं,
भवत्यक्त जो सब भाँति हरिमें चित्तसे आसक्त हैं॥

हे बालको! मुझसे छुड़ाते गुरु उसीका नाम हैं,
जिस नाममें ही प्राण मेरे पा रहे विश्राम हैं।
मम प्राण हरकर तो भले ही नाम-मणिको छीन ले,
तनका न मुझको मोह कुछ, चाहे गले, छीजे, जले॥

दोहा

रोम-रोममें रम गया, अब यह मेरे नाम।
मरनेके उपरान्त भी, नाम रटेगा चाम॥
कहते-कहते भक्तके, जलसे पूरित नैन।
पुलकित तन सहसा हुआ, बोला रुक रुक बैन॥

मेरा वही आधार है मुझको भरोसा है बड़ा,
निश्चय मुझे है सर्वथा, वह सामने मेरे खड़ा।
जब भी पुकारूँगा' उसे, उत्तर मिलेगा 'हाँ' तभी,
वह सत्यरूप दयाब्धि है, देता नहीं धोका कभी॥

प्यारे सखाओ! सत्य जानो वह रमा सब ठौर है,
उसको न जो भजता अहो! वह नीच है, खल चौर है।
काला यहाँ हो मुँह तथा यमदूत मुँह काला करें,
हरिनाम तजकर जो विषयके हेतु तन पाला करें॥'

सुन-सुन वचन प्रहलादके सब दैत्य-बालक तय गये,
पाकर सरस सत्संग कच्ची डालकी ज्यों नय गये।
सबके हृदयमें बीज हरिकी भक्तिका रोपा गया,
प्रहलाद भक्त किसानने यह ठाठ अति ठाठा नया॥

सच्चा हृदय संसारमें क्यासे न क्या कर डालता?
सच्ची लगनकी आगसे प्रेमी समुद्र उबालता।
है हिंसकोंका वश्य करना खेल बायें हाथका,
है हाथमें हथियार जिसके प्रेम संस्तुत-नाथका॥

प्रहलाद बोला—'बालको! हरि-हरि रटो सङ्कट कटें,
सत्प्रेमकी छोड़ो समीरण ज्यों विपद्-बादल फटें।'
तत्काल सारे छात्र हरि-हरिकी ध्वनी करने लगे,
या पाप-ताप-कलापके उर भीतिसे भरने लगे॥

दोहा

ध्वनिसे पूरित हो गया, विद्यालय शुभ धाम।
ईंट ईंट रटने लगी, श्रीहरिका शुभ नाम॥
जड़ थे सो चेतन हुए, चेतन जड़वत मौन।
पलटी यों पल एकमें, विद्यालयकी पौन॥

तत्काल गुरु भी आ गये, देखा कि, ढँग ही और है,
हरि-भक्तिकी, निज विपदकी छायी घटा घनघोर है।
मुझको न छोड़ेगा नृपति सुन पायगा जो यह कथा,
इस दुष्टका कुछ भी न बिगड़ेगा, मुझे होगी व्यथा॥

झपटा तुरत प्रहलादपर वह क्रोधमें पागल हुआ,
गोवत्सपर ज्यों व्याघ्र टूटै भूखसे विह्वल हुआ।
प्रहलादके धरकर स्वकरसे केश, खींच चला हहा!
जैसे कमलको नालयुत गजराज खींचे जा रहा॥

उस काल छात्रोंके न दुखकी हाय! कुछ सीमा रही,
जो कुछ व्यथा उनको हुई वह तो न जा सकती कही।
'रे दुष्ट! तुझको बोध देनेमें न त्रुटि रक्खी कहीं,
पर बात मेरी और निज, तूने तनिक रक्खी नहीं॥

उपचार है तेरा यही अब सौंप दूँ भूपालको,
तू देखना वह किस तरहसे माँगता है खालको।
यह स्वाँग तेरा एक ही तो बेंतमें उड़ जायगा,
मैं देख लूँगा स्वामि तेरा बीचमें पड़ जायगा॥

दोहा

किसने उसकी भक्तिसे, पाया है विश्राम।
नारद जैसे फिर रहे, भिक्षुक आठों याम॥'
खड़ा किया असुरेशके, जा सम्मुख तत्काल।
बढ़ा-चढ़ा करके कहा, उसका सारा हाल॥

'सुनिये असुरपति रोग यह मेरे नहीं बशका रहा,
उपचार मैं सब कर चुका, रोगी असाध्य हुआ महा।
निर्भय, निरंकुश है घना यह मानता मुझको नहीं,
सुनता नहीं, जो कुछ कहूँ, मन है लगा इसका कहीं॥

ज्यादह कहूँ क्या है मुझे तो मूर्ख ही यह मानता,
यह ज्ञानमें अपने समान न और को है जानता।
मुझसे कहे, 'गुरुजी! जगतमें धूल क्यों हो छानते,
परमेशका अपना अटल सम्बन्ध क्यों न पिछानते!'

यह आप तो बिगड़ा सही, सँगमें बिगाड़े छात्र हैं,
इस एकके सँगसे सभी वे बन गये दुष्पात्र हैं।
उन्मत्त हो-हो गा रहे हरिकी सतत नामावली,
इसके हृदय हरि-प्रेमकी अब खूब बढ़ ज्वाला चली॥

कहता यही है रात दिन रक्षक जगतका है वही,
भरपूर है ब्रह्मांडमें वह दूर हमसे है नहीं।
जिस काल यह उसकी कथा कहता, न सुध रहती इसे,
सुनता न फिर कुछ देखता मैं बात समझाऊँ किसे!

दोहा

मैं न बुझा सकता अहो! इसके उरकी आग।
राजन्! आप मिटाइये, इसका हरि-अनुराग॥'
सुनकर गुरु-वचनावली, बढ़ा क्रोध निःसीम।
थी गिलोय पहले कड़ी, पुनः चढ़ गयी नीम॥

'हाँ, क्या कहा प्रहलाद, हरि वह रम रहा सब ठौर है,
भजता नहीं जो है उसे, वह नीच है, खल चौर है!
मैं नीच हूँ, गुरु दुष्ट हैं, ये खल प्रजाजन हैं सभी,
ले भद्र! तुझको भद्रताका मैं पदक देता अभी॥

रे दुष्ट ! तुझको मारना जब चाहता हूँ मैं अभी,
जाने न मेरा हाथ लेता कौन है यह धर तभी।
'है पुत्र' बस यह भाव ही है हाथ मेरा रोकता,
नहिं तो कभीका शीश यह देता दिखायी लोटता॥

फिर भी तुझे मैं कह रहा हूँ, नीच! कहना मान जा,
कुलको कलङ्कित यों न कर, फहरा असुर-कुलकी ध्वजा।
है आज दिन मेरे विजयका विश्वमें डङ्का बजा,
फहरा रही सब ठौर है बस एक मेरी ही ध्वजा॥

हरि-चरि न कोई वस्तु है, सर्वेश यह तलवार है,
मैं ईश हूँ तो शक्ति यह असिकी प्रखरतर धार है।
सब ठौर मैंने जाँच ली, मुझसे बड़ा कोई नहीं,
जिस ओर मैं पहुँचा वहाँ आगे पड़ा कोई नहीं॥'

दोहा

'अहो ! पिताजी, यों नहीं, कहिये गर्वित बैन।
गर्व-खर्वकर है वही, अगणित कर, श्रुति, नैन॥
अगणित कानोंसे रहा, सुन यह सब संवाद।
उमड़ चलेगा सिन्धु वह, तोड़ सकल मर्याद॥

हे तात! ऐसे वचन फिर कहिये कदापि न भूल कर,
जो कह रहे हैं आप वैभवके नशेमें भूल कर।
जाने न कितने ठाठ ऐसे कालसे चर्वित हुए,
हैं ठाठ ये उस एकके ही हाथके निर्मित हुए॥'

'रे दुष्ट! बस तू मर चुका, यह जान अब मैंने लिया,'
फिर शीघ्र ही दो घातकोंको सौंप वह बालक दिया।
'जाओ, इसे सत्वर विनाशो, मत विलम्ब करो वृथा,
इसके मरेकी ही खबर पाकर मिटैगी मम व्यथा॥'

बस, उस समय प्रह्लादके मुखकी चमक अति बढ़ गयी,
तलवार वह तीखी, निराली शानपर आ चढ़ गयी।
मुख गौर, गोल कपोल, दृग अरविन्दसे सुन्दर बड़े,
काले भँवरसे बाल कोमल पीठतक जिसके पड़े॥

घातक युगल युग ओर, सम्मुख गुरु, जनक आदिक खड़े,
कहने लगा फिर वह वहाँपर यों वचन निर्भय बड़े।
'हे तात! गुरुवर! घातको! अपयश न अपने शीश लो,
उसकी कृपा है पूर्ण जबतक दाँत चाहे पीस लो॥

दोहा

जब तक वह निज स्नेहकी, सुधा रहा है सींच।
तब तक सीपीसे रहे तुम यह सिन्धु उलीच॥

कर भी न सकते बाल बाँका मारना तो दूर है,
वह दूर हमसे है नहीं, ब्रह्माण्डमें भरपूर है।
उसकी कृपासे हे पिता! प्रतिकूल भी अनुकूल हों,
भक्षक बनें रक्षक जभी, जो शूल हों वे फूल हों॥

जिस शीशपर है हाथ उसका, हाथ रिपुका क्या करे?
सीधी नज़र उसकी रहे, टेढ़ी नज़र जग कर मरे।
वह व्याप्त है चर, अचरमें, मुझमें व तुममें सकलमें,
जलमें, जलदमें, जलजमें, अलिमें, अनिलमें, अनलमें॥

मनमें, मननमें, मदनमें, जनमें, विजनमें, सदनमें,
गोमें, गिरामें, गर्वमें, गिरिमें, गरलमें, गगनमें।'
'रे दुष्ट! बक मत, मौन रह, बस देख लूँगा मैं सभी,
तेरा त्रिलोकी-नाथ तुझको आ बचा लेगा अभी॥'

जाओ इसे गिरिसे गिरा दो, या जला दो अनलमें,
सत्वर चिरा दो मत्त गजसे, या डुबा दो सलिलमें।
जीता नहीं लाना इसे, जीना तुम्हें यदि इष्ट हो,
पाली न आज्ञा तो तुम्हारा भी महान अनिष्ट हो॥

दोहा

'मेरी आँखोंसे करो, इसको सत्वर दूर।
फिर यह मेरे सामने, आये नहीं फितूर॥'

शिशुका पकड़कर हाथ तत्क्षण चल पड़े दोनों जभी,
पीछे लगी है मृत्यु मानों हरि हुए आगे अभी।
गिरिके शिखरपर चढ़ गये, शिशुको गिरानेके लिये,
भय भी दिखाया बहुत ही उसको डरानेके लिये॥

मानी न उसने एक भी फिर तो गिरा उसको दिया,
मानो धराने है धराधरका तनय गोदी लिया।
आयी न उसके फूलकी वह राम-राम रटे खड़ा,
इस ओर पाप कटें तथा उस ओर पूरित हो घड़ा॥

विस्मित हुए घातक बड़े, यह चमत्कार लखा जहाँ,
रोपित हुए फिर तो वहुत, देखें, वचेगा अव कहाँ?
गजराज एक प्रमत्त था, जो उस जगहपर भूमता,
वह था कभी चिंघाड़ता, स्वाधीन सब दिक् घूमता॥

शिशु सामने उसके किया, वे तो अलग झट हो गये,
गज जब चला उस ओर, शिशुके बन्द दृग-पट हो गये।
कुछ पढ़ रहा वह मन्त्र-सा, जिसका प्रभाव पड़ा वड़ा,
आता हुआ सहसा मतङ्ग हो गया रुककर खड़ा॥

दोहा

मानों उसके पैरमें, उलझी प्रेम-जँजीर।
पीलवान या हरि बने, भक्त बँधावन धीर॥

कुछ देर रुककर गज बहुत ही प्रेमसे आगे बढ़ा,
मानों किसीने मन्त्र इसके कानमें आकर पढ़ा।
निज स्वामि-सुतको मृत्युने ज्यों शीघ्र हो आकर लिया,
अह! उस कृती करिने स्वकरसे शीघ्र शिशु त्यों धर लिया॥

बैठा लिया निज पीठपर फुंकार लम्बी एक दी,
मैं हो गया कृतकृत्य मानों यों कहा उसने अभी।
'यह भक्त है उसका कि जिसको मैं पुकारा था कभी,
मेरे लिये जिसने कि खगपति भी विसारा था कभी॥'

यह देख अद्भुत कार्य अति आश्चर्यमें वे भर गये,
'यह तो मरा हमसे नहीं, हम ही इसीसे मर गये।'
डरते हुए दोनों जभी बध-यत्नमें तत्पर हुए,
पर यत्न वे सारे सफल विपरीत ही उनपर हुए॥

भीषण भुजग भूषण तथा पावक सुयावक-सी बनी,
गम्भीर नीर सुचीर, सुख-अयनी बनी असिकी अनी।
होकर हताश कपाससे मुख भासने उनके लगे,
निज मौत लख सहसा निकट अति भाव मन उनके जगे॥

'यह तो मरा न, मरें हमीं, अब क्या करें मग ही नहीं,
करना न था सो कर लिया, आगे बढ़े पग ही नहीं।
भाई! असुर कुल-पुल बहानेके लिये है यह नदी,
अब नाव नेकीकी तरेगी और डूबेगी बदी॥

दोहा

असुर-वंश-वनमें, अहो! प्रकटी है यह आग।
हा! हम-से लघु जीव अब, कहाँ जायँगे भाग॥'

इस भाँति चलते हाथ मलते, साथमें शिशु ले लिया,
भयभीत जाकर भूप सम्मुख, हाल यह सब कह दिया।
'मारो कि छोड़ो नाथ! हमसे तो मरा ही यह नहीं,
करना न था सो कर लिया कर-रेख इसकी है सही॥

रेखा हमारे हाथकी घिसकर इसीके कर गई,
करवालकी यह मूठ मुट्ठीमें कि जबसे है गही।
हे नाथ! इसको मारनेका यत्न अब मत कीजिये,
ऐसे सशक्त सुपूतको हतकर न अपयश लीजिये॥

निश्चय हमें तो है यही यह मर नहीं सकता कभी,
इसमें टिकी है शक्ति कुछ श्रमसे न यह थकता कभी।'
दुर्दिन लगेपर भी भली बातें सुहायी हैं कभी?
वैभव-बधिरको नीति-डौंडी दी सुनायी है कभी?

क्रोधित हुआ असुरेश बोला—'मुख न दिखलाओ अरे!
यह वाक्य कहनेसे प्रथम तुम डूब क्यों न कहीं मरे।
यह चीज बालक क्या अरे! तुमसे नहीं जो मर सका,
यह तुच्छ-सा भी काम नीचो! नहीं तुमसे सर सका॥

यह खोल दो चपरास जाओ, सामनेसे दूर हो,
मुझको न यह मालूम था तुम इस तरहके शूर हो।
कहता कदापि न मैं तुम्हें यदि जानता पहले सही,
युग दूत अति भयभीत, कम्पित गात हैं, तकते मही॥

दोहा

हरिभक्तोंके चित्तमें होती दया विशेष ।
आप सहें सङ्कट अमित, पर-दुख सहें न लेश ॥

कहने लगा प्रह्लाद—'तात ! इन्हें वृथा हैं कह रहे,
दोषी खड़ा मैं सामने, जो कुछ कहें, मुझसे कहें ।
मारें मुझे बेशक, न इनको आप अब कुछ भी कहें,
निर्दोष हैं, लाचार हैं, आधार ये किसका गहें ॥

'श्रीराम राम' रटो अरे ! ज्यों शीघ्र सङ्कट दूर हों,
रीते अभी भरपूर हों, सीधे बनें जो क्रूर हों ।'
असुराधिपति अति कड़ककर शिशुपर चला मनमें जला,
भूधर विशाल कराल बाल मराल ज्यों दलने चला ॥

शिशुके पकड़कर केश लम्बे वह लगा कहने यही—
'ले अब बुला उसको, बचा लेगा तुझे अब वह सही ।
देखूँ तुझे मैं और वह तेरा सहायक अति बली,
असली कि नकली, रे छली ! कबतक रहेगी यह कली ?'

कुछ होंठ शिशुके हिल रहे, भयभीत वह किञ्चित् न था,
संतत सुनाता ही रहा निज तातको वह हित-कथा ।
इस ओर केशवके सुजनके केश दैत्यपने गहे,
उस ओर केशव भक्त-हित हैं वेष अनुपम धर रहे ॥

दोहा

प्रेम-सरोवरका कमल, शिशु हरिजन सुकुमार।
नष्ट किया अब चाहता, गज मदान्ध अनुदार॥

'क्यों रे अधम! वह है कहाँ, उसको बुलाना तू अभी,
देखूँ हरेगा दुःख वह, उसको सुनाना तू सभी।
अब भी अरे शठ! सँभल जा, हठ छोड़ दे तू यह वृथा,
मैं छोड़ दूँ अब भी तुझे, क्यों पा रहा नाहक व्यथा?'

'हे तात! मैं सँभला हुआ हूँ, आप क्या चेता रहे,
राजी न हो तो नाव मेरी इस तरह खेता रहे?
मैं छोड़ दूँ कैसे उसे वह छोड़ता मुझको नहीं,
तनमें वही, मनमें वही, बाहर वही, भीतर वही॥

जो आप कहते हैं व्यथाकी, सो मुझे बिलकुल नहीं,
मुझको व्यथा है, आपको श्रीहरि न दिखलाते कहीं।'
'यह सत्य है तो क्या तुझे वह आ बचा लेगा नहीं?
इस खंभसे बाँधे हुएको क्या छुड़ा देगा नहीं?'

'आना कहाँसे है पिता वह व्याप्त है चर-अचरमें,
वह खंभमें है, खड्गमें, पर आपकी ना नजरमें।'
असुरेश अति क्रोधित हुआ, दृग-दीप ज्यों चसने लगे,
लखकर पराकाष्ठा अनयकी देव-गण हँसने लगे॥

दोहा

'बतलाता है ईश तू, इसी खंभके बीच,
क्यों बकता है व्यर्थ तू, रे कुल-लाञ्छन ! नीच।'
किया स्तम्भपर क्रोधसे, खलने गदा-प्रहार,
फाड़ खंभ निकले हरी, करके अति चिंघार॥

आँखें मिचीं सबकी वहाँ विस्मित हुए सब रह गये,
हरि हैं न नर, मृगरूपमें, युगरूप शुभ मिश्रित नये।
असुरेशके छक्के छुटे, लख मूर्ति अति भयदायिनी,
भगवान् नरहरिकी छटा उस काल अति अद्भुत बनी॥

दृग हैं तपाये स्वर्ण-सम, जिनमें अनलसी बस रही,
विकराल लाल विशाल मुखमें दंष्ट्र-अवली लस रही।
जिह्वा भयङ्कर लाल मानो रक्तमें भीगी छुरी,
जब हैं जम्हाते, काँपती हैं शक्तियाँ सब आसुरी॥

मुख और ग्रीवापर लटकते केशरानी बाल हैं,
ये बाल हैं या खल-मृगोंको फाँदनेके जाल हैं?
ग्रीवा बहुत मोटी तथा छोटी, हृदय सुविशाल है,
उर है न यह सज्जन मरालोंका सुमानस ताल है॥

हरि हैं कि ये प्रत्यक्ष असुरोंके भयङ्कर काल हैं,
क्या दन्त, मुख, नख एकसे बढ़ एक अति विकराल हैं।
हरि-सिन्धु हैं, विक्रम गहन जल, दन्त, नख, मुख ग्राह हैं,
अति क्रोधके आवर्त हैं, गम्भीर हैं, बेथाह हैं॥

दोहा

पल पल जाती है चढ़ी, परम तेजकी झाल।
मानो राक्षस-जगत्‌को, लगा प्रलयका काल॥

था कम न हिरनाकुश प्रबल, मन थामकर निर्भय हुआ,
वह जान तो पाया कि यह हरिसे सकल अभिनय हुआ।
परवा न उसने की तनिक, वह टूटकर हरिपर पड़ा,
चम-चम चमकता तीव्र बिजली-तुल्य ले खांडा कड़ा॥

तलवारवाला हाथ ऊँचा ही रहा, हरिने जभी,
बायाँ चपेटा खींच मारा, वह हुआ बेसुध तभी।
तत्काल सुध पाकर खड़ा वह हो गया क्रोधित हुआ,
खगराज सम्मुख व्यालवत् ही वह वहाँ बोधित हुआ॥

होकर कुपित हरिपर भयङ्कर वार असि-फणका किया,
सत्वर बचा वह वार हरिने रस बढ़ा रणका दिया।
खिलवारकर कुछ देरतक उसको हँफा हरिने लिया,
उसके चढ़े अति साँस बस मुँह खोल निज खलने दिया॥

अति जोरसे नरसिंह गर्जे–भीतिसे आँखें मिचीं,
खलराजकी उस काल सारी शक्तियाँ हरिमें खिचीं।
हरिने उसे फिर पकड़कर निज ओर खींच लिया जभी,
खगराज विषधरको यथा, बस, हेकड़ी भूला सभी॥

दोहा

हरिने अपनी जङ्घपर, लिया दुष्टको डाल।
भयसे वह बेसुध हुआ, पड़ा गर्वका जाल ॥

प्रह्लादकी आँखें मिचीं विकराल भाल लखा जहाँ,
दृग-कंजमें भर नीर आया, था हिया रुकना कहाँ ?
अत्यन्त दुख पाया हुआ शिशु तात पा ज्यों रो पड़े,
प्रह्लादका गल त्यों रुका, लखता उन्हें इकटक खड़े ॥

गुरु गर्जना हरिने करी, ब्रह्माण्ड पूरित कर दिया,
'हे वत्स ! मत रो' यों कहा मानो, स्वजन निर्भय किया।
तीखे नखोंकी धारसे उर फाड़ राक्षसका दिया,
मुख टेककर खलके हृदयका रक्त अति रससे पिया ॥

झट काढ़ लीं आँतें उदरसे रक्तमें भरती हुईं,
'हम हैं अनयकी माल' मानो यों कथन करती हुईं ॥
अन्यायियोंकी एक दिन इस भाँति कढ़ती अँतड़ियाँ,
निकलें उदरको फाड़कर अन्याय बढ़ती अँतड़ियाँ ॥

संसारके अन्यायियो ! अभिमानियो ! सच मानियो,
निश्चय फलेंगे पाप-तरु, इसमें न संशय जानियो।
पाकर विभव हे मानवो ! मनमें कभी मत फूलना,
मत गर्व-भूले भूलना, हरिको कदापि न भूलना ॥

दोहा

सभी ठौर सब काल हैं, देख रहे भगवान।
कभी सह सकेंगे नहीं, अनय-मूल अभिमान॥

सुनकर भयानक गर्जना नभसे सुरोंकी मण्डली,
लखने लगी विस्मित हुई चित्रित समान नरस्थली।
रणवास तत्क्षण और पुरजन सब वहाँपर आ गये,
रोमाञ्चकारी दृश्य लख विस्मित हुए घबरा गये॥

भगवान नरसिंहका नहीं अब क्रोध होता दूर है,
सिरके खड़े हैं बाल अति विकराल, आकृति क्रूर है।
आँखें अनल-सी चस रहीं उस भीतिदायक भालपर,
नख, मुख, रुधिर लिथड़े हुए, दंष्ट्राग्र जिह्वा लाल पर॥

हो क्रुद्ध चारों ओर देखें, 'त्राहि' 'त्राहि' करें सभी,
बहुभाँति स्तुति सुरगण करें, भगवन्! डरें हम, जगत् भी।
यह वेष शीघ्र समेटिये प्रभु! शान्त अब हो जाइये,
अब ही प्रलय है दूर भगवन्! यों न भय दिखलाइये॥

मारा गया अघमूल खल, अब धैर्य सबको दीजिये,
उस सौम्य अपने रूपसे कृतकृत्य हमको कीजिये।
तव जन-चकोर विलोकता होकर सशोक वियोगमें,
राकेश मुखकी छवि सुधा टपकाइये इस योगमें॥

दोहा

सुर-गण विनती कर थके, सुनी नहीं भगवान ।
मानो निज जन-स्तुति प्रथम, सुनना चाहें कान ॥

प्रह्लादके दृग बन्द हैं, आँसू बहे हैं जा रहे,
हरि-प्रेमका सन्देश मानो ये हृदयसे ला रहे ।
अति भक्तिके उद्रेकसे प्रह्लादका गल रुक गया,
मुखसे न आया बोल, जाकर हरि-पदोंमें झुक गया ॥

कुछ चाहता करना विनय, पर बोल आता है नहीं,
अब तो हृदयमें प्रेमका सागर समाता है नहीं ।
भगवान अपने भक्तकी लख यह दशा पिघले जभी,
क्या ताव पाकर अग्निका घृत जमा रह सकता कभी ?

जिस हाथकी छाया जगत्के ताप हर लेती सभी,
वह हाथ शिशुके शीशपर भगवानने फेरा जभी ।
प्रह्लादने करनी विनय तत्काल ही प्रारम्भ की,
उस विश्व-वटके मूलकी चौदह भुवनके स्तम्भकी ॥

'हे हे दयामय ! दीनबन्धो ! सौख्य-सिन्धो ! श्रीपते !
इस भाँति कितनी बार पहले भी असुर तुमने हते ।
जब-जब जगत्में पापकी आँधी चला करती कड़ी,
तब-तब तुम्हीं अवतारकी वर्षा किया करते बड़ी ॥

दोहा

जब जब इस भव-बागको, खाते महिष वराह।
तब तब उनको नाशते, जन कुसुमोंकी चाह॥

जब नास्तिकता-सरिता उमड़े, श्रुति-सेतु महान ढहा करते,
नृप-कोप महान हुताशनमें दहते सब लोग 'हहा' करते।
जब हैं रथ धर्म सनातनके पहिये बहु जीर्ण हुआ करते,
बहु कारण ले करके वसुधातल पै अवतीर्ण हुआ करते॥

हरि! आप तुषार स्वरूप सदा खल-कञ्ज महावन नाशनको,
रवि-रूप सदैव स्वभक्त-सुमानस-कञ्ज विशेष विकासनको।
यह संसृति-यन्त्र सदा चलता प्रभु-इंगितमात्र नियन्त्रणमें,
वह ठौर नहीं, तुम हो न जहाँ, रहते गिरि और रजःकणमें॥

जन-ताप-कुआतप नाशनको करुणाजलके शुचि बादल हो,
भवदाहनिवारणको जलकी, तुहिनाचल हो, मलयाचल हो।
अविभक्त, अनाम, अदेह, अनीह, अजेय, अकाम, अनूप, प्रभो!
अविकार, अपार, उदार, अनन्त, अनादि, अजन्म, अरूप, विभो॥

शिव, शारद, नारद, ज्ञानविशारद, शेष, सुरेश, दिनेश सदा,
गुणगान किया करते प्रभुका, कवि-कीर्ति कथा करते सुखदा।
किस भाँति कहूँ प्रभुकी महिमा, कुछ थाह नहीं, मुख एक तथा,
कब हैं किसने तृणसे कहिये, जलवान महान अगाध मथा॥

दोहा

करते-करते स्तुति अहा ! मौन हुआ प्रह्लाद ।
उरमें अति आह्लाद है, पा हरि-दर्श-प्रसाद ॥
रसना, लोचन हो गये, तनिक देरको बन्द ।
मानस-रथके अश्व क्या, थके भार आनन्द ?

तत्काल ही फिर निज हृदयके भाव वह कहने लगा,
या भाव-सिन्धु-प्रवाहमें बेवश हुआ बहने लगा ।
मेरे गुणोंसे रीझकर प्रभुने न ये दर्शन दिये,
मुझपर दया ही आ गयी कृतकृत्य करनेके लिये ॥

विद्या, विमल-कुल-जन्म, पौरुप, तप, सुजप कुछ भी नहीं,
गौरव मुझे इतना दिया हरि आप उठ आये यहीं ।
गुणगान क्या कुछ चाहिये हरिको रिझानेके लिये ?
हरि तो सदा तैयार हैं सब ठौर आनेके लिये ॥

छल-छद्म, संशय, शोक तज उर प्रेम होना चाहिये,
हरिको बिठानेके लिये उर-पीठ धोना चाहिये ।
उस विप्रसे जो है न हरिको भूलकर भजता कदा,
रीते घड़ेकी भाँति ही अभिमानमें बजता सदा ॥

चाण्डाल वह अच्छा कहीं, भगवान्‌को भजता सदा,
बहती हृदयमें हो विमल हरि-प्रेम-धारा सर्वदा ।
चाण्डाल वह रहता नहीं हरि-प्रेममें जो मग्न है,
होता तुरत वह शुद्ध जो हरि-प्रेममें संलग्न है ॥

दोहा

बल, वैभव, विद्या, वपुष, ये जो चार प्रकार।
विना विनय विषके विटप, कारक बहुत विकार॥

विनती है मेरी यही, सुनिये दीनदयाल।
मेरे मानसमें रमे, नित प्रभु-नाम-मराल॥'

'माँग, माँग वर माँग शिशु! कुछ भी मुझसे आज।
अपना ही कर जान तू वसुधा भरका राज॥

सत्प्रेमकी शुभ आँचसे तूने मुझे पिघला लिया,
मेरा हुआ जबसे कि तूने चित्त है मुझको दिया।
तेरे लिये मुझको न कोई वस्तु आज अदेय है,
मुझ-साथ एकात्मा हुआ, शुचिवृत्त तेरा गेय है॥'

'हे नाथ! मुझको चाहिये कुछ भी नहीं, मैं स्वस्थ हूँ,
यह राज्यका सुख क्षणस्थायी ले, न मैं अस्वस्थ हूँ।
भगवन्! तुम्हारी भक्तिका प्रह्लाद व्यापारी बने?
माँगे विना ही भक्तिसे मेरे सरे कारज घने॥

धिक्कार है सौ बार मुझको भक्तिका बदला करूँ—
त्रैलोक्यके भी राज्यसे, मैं तो न दुःखोंसे डरूँ।
हैं अन्न, धन, भूषन, वसन, परिवार जन, सुन्दर सदन,
सब कुछ तुम्हारी भक्तिमें, मैं तो न चाहूँ और धन॥

इच्छा मुझे है बस यही, निज-भक्ति मुझको दीजिये,
करुणानिधे! मम तातको भी मुक्त अब तो कीजिये।
हाँ, और इतना कीजिये, कलिके न जन यों परखिये,
उनको समझकर शिशु निरे लघु भक्तिसे ही हरखिये॥'

दोहा

सुनकर वर वचनावली, बोले श्रीभगवान।
'धन्य धन्य हे वत्स! तू, हो तेरा कल्यान॥

हे वत्स! तेरे तातकी क्या मुक्तिमें सन्देह है,
मम भक्तके चौदह कुलोंको तारता मम स्नेह है।
यह हाथसे मेरे मरा, मम शत्रुरूपी भक्त है,
इसके लिये चिन्तित न हो, मम हेतु यह तन त्यक्त है॥

तेरी तरह कलिके न भक्तोंकी परीक्षा लूँ कभी,
लघु भक्तिसे ही रीझकर वाञ्छित उन्हें फल दूँ सभी।
यदि सत्यताके साथ मेरी भक्ति होगी तनिक भी,
तत्काल हूँगा तुष्ट मैं, तुझको बताता हूँ सभी॥

पर रूप किञ्चित् भक्तिसे कोई विशेष न मैं धरूँ,
उनके हृदयमें ही बसा पूरी मनोवाञ्छा करूँ।
प्रह्लाद! तूने सर्वथा मुझको किया सन्तुष्ट है,
माँगा न फिर कुछ भी अहो! तू तो महा प्रण-पुष्ट है॥

जा, मैं विना माँगे तुझे वरदान देता हूँ यही,
निर्लिप्त होकर भोग सुखसे वत्स ! यह सारी मही।
सेवा हि करना विश्वकी मेरे लिये अनुराग कर,
तू अन्तमें मुझको मिलेगा, शान्तिसे तन त्याग कर॥'

दोहा

देकर अपने भक्तको, बिन माँगा वरदान।
लखते-लखते हो गये, श्रीहरि अन्तर्द्धान॥
सुमन-वृष्टि नभसे हुई, बाजे बजे महान।
धन्य धन्यकी ध्वनि मची, महा भागवत जान॥
धन्य धन्य प्रह्लाद तू धन्य असुरकुल धन्य।
धन्य जननिकी कूख वह, जन्मा भक्त अनन्य॥
जो जन यह प्रह्लादकी, सुनें, सुनावें गाथ।
प्रीति बढ़े भगवानमें, हरि हो उनके साथ॥
लिख चरित्र हरि-भक्तके, तुलसी मति कृतकृत्य।
आगे भी करती रहे, चरित-निरत नित नृत्य॥

भक्त-भारती
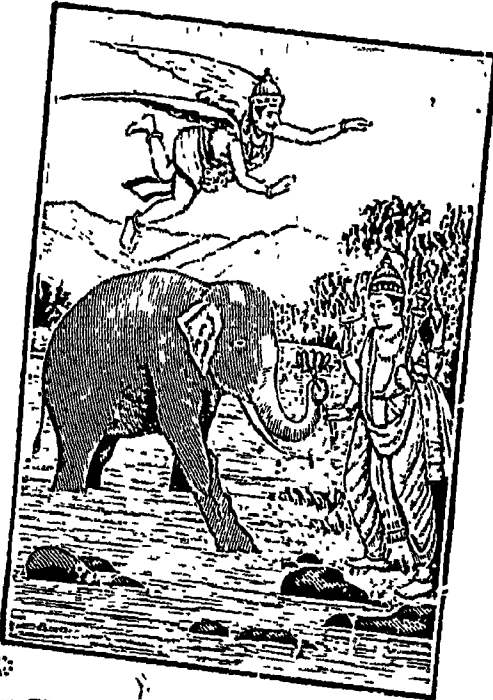
गजरक्षक-गोविन्द

गजेन्द्र

दोहा

आर्त्त-भक्तकी शुभ कथा, सुनिये नृपति सुजान।
विपद समयमें स्वजनकी, लाज रखें भगवान॥

भगवान ऐसे हैं दयामय, कुछ कहे जाते नहीं,
उनके चरित अद्भुत, अमित हम पार हैं पाते नहीं।
कोई सुनावे निज व्यथा वे सर्वदा तैयार हैं,
है काम ही उनका यही, करते सतत उद्धार हैं॥

हो भक्त भी चाहे न, उनको स्मरण करते ही, जभी,
कारुण्य-रव सुन भग चलें, दुख नष्ट करनेको सभी।
वह भक्त ही है जो उन्हें सङ्कट समयमें बोल ले,
हरि-ग्रन्थि है ऐसी सुगम कोई किसी बिध खोल ले॥

बस, 'हरि' पुकारा चाहिये मानो खड़े थे पास ही,
वे दूर हैं जबतक कि उरमें है नहीं विश्वास ही।
वे जातिको, धनको, सुविद्या, आयुको, तप-तावको–
कब देखते हैं ? देखते बस एक उरके भावको॥

जन्मान्तरोंकी भक्तिसे क्षण-भक्ति अति कर मानते,
वे ऊपरी बातें न लेते, भीतरी हैं जानते।
वे दूर हैं उनके लिये जो दूर उनको मानते,
वे पास हैं उनके खड़े, जो पास उनको जानते॥

दोहा

इसी नियमकी भूपते ! सुनिये कथा रसाल।
सुननेसे कल्याण हो, दे हरि-रति-सरि झाल॥
शोभित सरस सुहावना, गिरि त्रिकूट विख्यात।
क्षीर-सिन्धुसे जो घिरा, बहती जहाँ त्रिवात॥

हैं तीन जिसके स्वर्ण, लोहे, रजतकी शिखरें बड़ीं,
तीनों गुणोंकी मूर्त्तियाँ प्रत्यक्ष मानो हैं खड़ीं।
जिनसे प्रकाशित सब दिशाएँ, क्षीर-निधि शोभित महा,
निज झाल-मालासे पयोनिधि चरण-गिरिके धो रहा॥

द्रुमवर लतादिकसे सकल वह शैल यों छाया हुआ,
ऋतुराज मानो है यहींपर सैरको आया हुआ।
शीतल, मधुर, निर्मल सलिल-निर्झर-मधुर धुनि प्रतिधुनी,
होते सुखित हैं कान सुन-सुन प्राकृतिक यह रागिनी॥

गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ, सिद्ध, चारण-वर तथा,
गिरि-कन्दराओंमें विहरते मोद-युत हो सर्वथा।
उनके मधुर संगीतकी ध्वनि गूँजती रहती सदा,
'सुख है यहीं, सुख है यहीं' वीणा यही कहती सदा॥

मृत अङ्गमें भर प्राण आवें सुन मृदङ्ग सुहावना,
अपना विपक्षी जान केहरि हुंकरे भ्रममें सना।
सुर-वाटिकाओंमें विविध विधिके विहग वर बोलते,
बोली रसीली, कलित कुञ्जोंमें विशेष कलोलते॥

दोहा

स्वच्छ नीर सर, सरित-तट, शोभित सुन्दर रेत।
लहराते कुछ दूरपर, हरे हरे नव खेत॥
सुर-ललना-गणके जहाँ करनेसे नित स्नान।
हुए सुवासित जल पवन, भ्रमते भ्रमर महान॥

उस ही विशाल त्रिकूट गिरिपर वरुणका शुभ बाग है,
'ऋतुमान' नामक अति सरस, जिसपर विहग अनुराग है।
फल-फूलनेवाले विविध विधिके विटप उसमें लगे,
अति सौरभित कुसुमित विटप, फल लटकते रसमें पगे॥

मन्दार, पाटल, पारिजात, अशोक, चम्पा, आम हैं,
कटहर, खजूर, अनार आदिक वृक्ष-फल रसधाम हैं।
अर्जुन, तमाल, प्रियाल, किंशुक, ताल, शाल, विशाल हैं,
वट, बेर, बेल विशेष विहगोंके बने प्रतिपाल हैं॥

ऋतुमानके ही पासमें है एक सरवर अति बड़ा,
मानो यही गिरिका हृदय, क्या क्या न इसमें है पड़ा?
होते बड़े जो लोग हैं, होते हृदय उनके बड़े,
होते विकार बड़े तथा, खुलते प्रयोजनके पड़े॥

उस स्वच्छ सरमें कोकनद, कैरव, सुकञ्ज खिले हुए,
भ्रमते भ्रमर जिनपर सतत मदमत्त, चित्त सिले हुए।
कलकण्ठ खगगणके मधुर स्वरसे सरस परिपूर्ण है,
यह साज कलुषित चित्त धनपति-तुल्य ही सम्पूर्ण है॥

दोहा

चकवा, सारस, हंस वर, कारण्डव खग-वृन्द।
उसके निर्मल तीरपर, मना रहे आनन्द॥
माची फिरती मछलियाँ, भरे ऐंठमें कच्छ।
सरसिरुहोंको छेड़कर, चलें, हिलें वे स्वच्छ॥

सरके किनारेपर सरस कुसुमित सुगन्धित वृक्ष हैं,
जिनके सुमन दृग, घ्राण-इन्द्रिय मोहनेमें दक्ष हैं।
हैं बाँस भी लम्बे अमित, नभ फोड़नेको जा रहे,
फल फूलसे वञ्चित निरे, निज मूर्खता जतला रहे॥
है बेंतका भी गाछ उसका ही अनुज, कोरा कड़ा,
जो फूलता-फलता न, पर के दण्ड-साधन-हित खड़ा।
सूका खड़ा है ठूँठ, नीरस व्यक्ति-सा कोई कहीं,
नीरस हृदय सहृदय जनोंमें हैं छटा पाते नहीं॥

मदमत्त गज-पति एक दिन उस ठौर आ पहुँचा कहीं,
छोटे-बड़े सब जीव भागे प्राण ले, ठहरे नहीं।
दल-बल-सहित गज-पति जिधर होता उधर ही राह था,
निर्भय हुआ वह झूमता चलता, न बलका थाह था॥

उसने अनेकों शाखियोंको ठूँठ कर डाला तथा,
जलयुक्त झंझानिल, उपल-तूफान आया हो यथा।
सुनता अरड़ ही मरड़ रव कुछ और सुन पड़ता नहीं,
खग, मृग वहाँ क्या टिक सकें, मृगराजका न पता कहीं॥

दोहा

गज-दलने उस विपिनमें, खूब मचाई धूम।
मानो बादल भूमिपर, आज रहे हैं घूम॥
तृण लगीं सरको चले, दलते-मलते पत्र।
मानो डौंडी पिट गई, आगे भी सर्वत्र॥

उन हाथियोंके है सिरोंसे सौरभित मद बह रहा,
मँडरा रहीं अलि-मँडलियाँ, इस दृश्यकी शोभा महा।
गजराजने निज सूँड़ जाकर टेक उस सरमें दिया,
जो साथ थे हाथी-हथिनियाँ, उन सभीने जल पिया॥

गजराज जल पीकर मुड़ा, जंजीर पगमें जड़ गई,
दुर्दैवकी हा! हा! अचानक दृष्टि उसपर पड़ गई।
अति क्रूर, भीषण ग्राहकी करतूतने यह क्या किया?
गजराजका रस-रंग यों पल एकमें विनशा दिया॥

गज चाहता जलसे निकलना, पर उधर ही जा रहा,
गम्भीर सरवरमें खिंचा पल कल्प-तुल्य बिता रहा।
गज हो गया बेवश, विकल, बेहाल, बल भूला सभी,
थर-थर लगा तन काँपने, यह दुख न देखा था कभी॥

निर्भय, निरंकुश था रमा वनमें हथिनियोंमें सदा,
यह तो अचानक आ गई सिरपर भयानक आपदा।
अब तो लगा चिंघाड़ने कोई नहीं सुनता वहाँ,
है मौतसे पाला पड़ा, साथी वहाँ पावें कहाँ?

दोहा

जब आते हैं कष्ट दिन, सब तज देते साथ।
बाल व्याल अपने बनें, सुधा बने विष-क्वाथ॥

गजने विचारा हाय हा! किसकी शरण अब मैं गहूँ?
सन्तापकी वेला विकट, इस कालकी किससे कहूँ?
है कौन ऐसा जो मुझे थपकी लगा निर्भय करे,
'हे वत्स! मत डर' यों कहे, मेरी महा विपदा हरे॥

अब तो मुझे रक्खे वही जिसका सकल यह खेल है,
हूँ अब उसीकी शरण मैं, मम जल चुका बल-तेल है।
'हे नाथ! दीनानाथ! करुणासिन्धु! रक्षक तू अभी,
इस काल मेरा है न कोई, तज चले साथी सभी॥

तेरे बिना भगवान ! मेरा अब सहारा क्या रहा?
भगवान! आओ भागकर मैं तो बहुत दुख पा रहा।
मुझ नीचपर जाना नहीं, अपना विरद सम्भालना,
इससे बचा लो फिर भले निज चक्रसे ही मारना॥

जो देख लोगे कर्म मेरे, फिर मुझे आशा नहीं,
हे नाथ! तज दोगे मुझे तो ठौर फिर क्या है कहीं?
मतिमन्द हूँ, पशुयोनि हूँ, संयम-नियमसे हीन हूँ,
तन मन मलीन, प्रवीन पापी, पीन विषयाधीन हूँ॥

दोहा

हा! हा! मुझको दुःख है, किये सदा दुष्कर्म।
जीव सताये व्यर्थ ही, सो ये फले अधर्म॥

हे नाथ! नर, सुर, मुनि सदा तो तारते ही आप हैं,
यह नीच पशु भी तार दो, मेरे फले बहु पाप हैं।
कामादि छः-छः ग्राह-गणसे निज बचाते भक्त हो,
इस एकसे मुझको बचा लो, आप भक्तासक्त हो॥

मैं यह नहीं कहता कि मैं हूँ भक्त सच्चा आपका,
वह भक्त कैसे हो भला, पूरित घड़ा जो पापका?
इस 'भक्त' पावन नामकी महिमा घटाता मैं नहीं,
सच्चा कहाता भक्त जब, सुखमें शरण आता कहीं॥

दुख-वायुका प्रेरा हुआ तिनका पदोंमें आ पड़ा,
इसको उठाओ नाथ ! अपना हाथ फैलाकर बड़ा।
तुम हो दयाके सिन्धु, दीनानाथ ! मैं दयनीय हूँ,
मैं भक्त तो बेशक नहीं, पर भीत, आर्त, त्वदीय हूँ॥

नीचातिनीच मलीनके भी पाप विनसाना सदा,
है शरण आयेको तुम्हारा नियम, अपनाना सदा।
हे नाथ ! अब अवसर नहीं है मत विलम्ब करो वृथा,
संसार गायेगा तुम्हारी यह दयावाली कथा॥

दोहा

नाथ ! तुम्हारे नामके, सँगमें मेरा काम।
बनता है लीजे बना, तुमको अमित प्रणाम॥
ग्रसता है गजको गिरह, होता है अन्याय।
चर्चा होगी आपकी, जो न करोगे न्याय॥

यह लो, अजी ! यह लो, प्रभो ! मैं तो चला हूँ जा रहा,
तुमने दयाका काम क्या यह आजसे त्यागा महा ?
यह जो तुम्हारा नाम दीनानाथ, करुणासिन्धु है,
बस, आजसे इस नामपर हे नाथ ! लगता बिन्दु है॥
या देखकर मुझको महापापी, कहीं घबरा गये,
या और दीनोंके कहींसे पत्र दुखके आ गये।
हे नाथ ! जो अच्छा तुम्हें मुझको वही स्वीकार है,
करता नमन अन्तिम तुम्हें यह दास बारम्बार है॥

हे नाथ ! देनेको न मेरे पास कुछ उपहार है,
क्या इसलिये मेरी सुनी प्रभुने न दुःख-पुकार है।
दृग-नीरको मन-पात्रमें भर, अर्घ्य हरिको दे दिया,
गजराजने ऐसे समयमें यज्ञ यह मानों किया॥

फिर पद्मिने ले पद्म हरि-पद-पद्ममें अर्पित किया,
करिने यथा अपनी व्यथा लिख पत्र हरिको दे दिया।
उठकर भगे भगवान अपना यान भी भूले अहा?
पर बान निज भूले नहीं—गज मान जन अपना महा॥

दोहा

द्विरद रूपमें निज विरद, शीघ्र बचाने हेत।
जन-धीरद, नीरद-वपुप, भगे भीड़के खेत॥
'ना' निकला था वदनसे, बाकी पड़ा 'थ' कार।
मकर-शीश हर ले गई, प्रखर चक्रकी धार॥
हरिकी करुणा-दृष्टिसे, कटे हस्तिके फन्द।
जलसे निकला द्विरद वर, माने अति आनन्द॥

जो जाते हरिकी शरण, न वे दुख पाते,
जो जाते रोते वही विहँसते आते।
जो जाते खाली हाथ लदे वे आते,
जो जाते हरिकी शरण, न वे पछताते॥

किस किसने जाकर शरण न क्या कुछ पाया,
जब हरि ही रीझें, छिपे कहाँ फिर माया?
क्या ध्रुवने रस्ता हमें नहीं बतलाया?
क्या भक्तराजने यों ही कष्ट उठाया?

इस गजने भी तो यही बात बतलाई,
हरि हैं न देखते पापोंकी अधिकाई।
जब हरिके उरमें झाल दयाकी आई,
हरि करते रजसे मेरु, मेरुसे राई॥

तुम धन्य धन्य गजराज भक्तवर नामी,
दृग-जलसे यों पिघलाये अन्तर्यामी।
कहाँ तुम्हारा नीच गात अति कामी?
कहाँ विश्वके नाथ, गरुड़के गामी?

दोहा

यह सब महिमा प्रेमकी, कनक, राँगका मेल।
कौन समझ सकता अहो! हरिके अद्भुत खेल॥
जो जन इस शुभ गाथको, पढ़ें प्रेमके साथ।
सांसारिक सङ्कट कटें, रीझें श्रीयदुनाथ॥

शबरी

पृष्ठ ७१
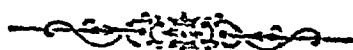
शबरी

दोहा

राम लखन बनमें फिरें, सिय खोजनकी टेक।
खोज खोजमें मिल गयी, भक्त भीलनी एक ॥

आते हुए देखे जहाँ, बालक युगल सुन्दर महा,
आनन्दसे उमगी हुई, आसन लगी ढूँढन अहा!
लायी कहींसे टाटका टुकड़ा पुराना अति फटा,
अति प्रेमसे उसको बिछाया, मोदकी उरमें घटा॥

श्रीराम, लछमन प्रेमसे झट बैठ आसनपर गये,
सौभाग्य अपना जान कर दृग भीलनीके भर गये।
आसन नहीं था वह हृदय था भीलनीका रस भरा,
स्वीकार सच्चे पारखीने है उसे तब ही करा॥

आतिथ्य करना भूलकर वह देखने उनको लगी,
मानो चकोरी चन्द्रमा-युग देखती सुखमें पगी।
अति भक्तिसे श्रीराम-चरणोंमें झुकी शबरी जभी,
जन्मान्तरोंके पाप मानो क्षय हुए उसके तभी॥

राघव-पदोंसे सिर न अपना वह उठाना चाहती,
वह पा चुकी सर्वस्व, मानो कुछ न पाना चाहती।
यह देखकर उसकी दशा भर नेत्र राघवके गये,
ज्यों ओसकणसे पूर्ण मानो हो गये पङ्कज नये॥

दोहा

लख शबरीका प्रेम यों, लक्ष्मण दोलित मौन।
चेतनको जड़वत् किया, धन्य! प्रेमकी पौन॥
चरणोंसे उसको उठा, फिर यों बोले राम।
मैं तुझसे सन्तुष्ट हूँ, सभी भाँति हे बाम॥

फिर ध्यान शबरीको हुआ आतिथ्य मैंने क्या किया?
जलपान करवाया न कुछ संकोचसे पूरित हिया!
भीतर गयी तत्काल लायी बेर झोलीमें भरे,
ये बेर कुछ तो लाल मीठे और कुछ खट्टे हरे॥

प्रभुके निकट-सी बैठकर वह भीलनी भोली भली,
देने लगी वर बेर चुन चुन प्रेम अमृतकी डली।
भिलनी खिलाने लग गयी, भगवान खाने लग गये,
इस भोगसे भव-रोग सारे भीलनीके भग गये॥

खट्टा कहीं श्रीराम-मुखमें बेर एक चला गया,
वह बेर अपना रंग मीठा और ही लाया नया।
वह प्रेम-पगली बेर फिर चख चख उन्हें देने लगी,
इस प्रेम-वर्षासे अहा ! श्रीरामको भेने लगी॥

लेती प्रथम चख बेर मीठा, रामको देती तभी,
'लछमन ! रसीले बेर यह' भगवान् यों कहते जभी॥
अति स्वादसे खाते हुए करते बड़ाई जा रहे!
भिलनी तुम्हारे बेर ये मीठे हमें हैं भा रहे॥

दोहा

लायी हो किस ठौरसे, इतने मीठे बेर।
किस रसमें बौरे इन्हें, रसका इनमें ढेर॥
गद्गद भिलनी हो गयी, सुनकर मधुरे बोल।
लगी झूलने भीलनी, चढ़ी प्रेमकी दोल॥

सवैया

हे रघुनाथ ! न मीठे हैं बेर ये,
मीठो तुम्हारो ही चित्त है भारी,
हाथके छूए न बेर मेरे कोऊ—
चाखै, जो जानि ले जाति हमारी।

ओछो ते ओछी है भीलकी जाति,
औ तापर नारी मैं नीच गँवारी,
माँगिके खात सराहत जात ये,
पूर्वके पुण्यकी मेरी है बारी॥

दर्शन हेतु तजैं धन धाम,
औ जोग कमाय समाधि लगावैं,
धूप औ शीत सहैं सिर ऊपर,
तो भी न ये शुभ दर्शन पावैं।
भाग्य जगे मम आज अचानक,
दासीके द्वारपै चालिके आवैं,
भोगनके ठुकरावन वारे ये,
बेरन खातिर हाथ बढ़ावैं॥

दाख औ माखन जो घर होते तो,
आज खिलाय निकासती जीकी,
चूरके देती मैं चूरमो चोखो पै,
जोर, नहीं घर आँगुरी घीकी।
मानके राखन खातिर मानी है,
रंकिनिकी मिजमानी ये नीकी,
बेरनसों मिजमानीकी बात
रहेगी सदा ये बनी भिलनीकी॥

हे रघुनाथ ! तुम्हारो दयालु,
स्वभाव सुन्यो जस वैसो हि पायो,
याही दयालु स्वभावके कारण
तीनहूँ लोकनमें यश छायो।
बारहिं बार जो बेरन माँगनको
इतिहास नयो ये वनायो,
कौनहू भौन समाये न ये यश-
पौन रखैगी सदा अपनायो॥

दोहा

सुनकर विनती वामकी, हँसकर बोले राम।
क्यों इतनी सकुचा रही, बेरोंपर हे वाम !

मेरे लिये संसारमें कोई पदार्थ बुरा नहीं,
अभिमानमें जो है भरा सबसे बुरा बस है वही।
सत्प्रेम-श्रद्धासे दिया विष भी मुझे तो पेय है,
मम भक्तका अर्पित मुझे कोई पदार्थ न हेय है॥

मुझको सरस है वस्तु वह जिसमें हृदय होवे भरा,
मैं देखता खट्टा न मीठा और सूखा भी हरा।
जूठे खिलाये बेर क्या, मम चित्त तूने हर लिया,
माता सदृश तू हो गयी सुत-भाव जो मुझपर किया॥

यह राम है तेरा, तुझे कोई न वस्तु अदेय है,
वर माँग इच्छित आज तू, तेरे लिये सब देय है।
सुन रामके मधुरे वचन भिलनी न निज तनमें रही,
अति स्नेह, श्रद्धा, प्रेमकी त्रैधारमें वेवश बही॥

'है कौन-सी वह वस्तु जगकी मूल्य रखती हो घना—
इन दर्शनोंसे, चित्त मेरा सुख-सुधामें है सना।
हे नाथ! यह विषमय मुझे, किस बातपर रीझे कहो?
माँगू भला क्या आज मैं, पाया नहीं क्या कुछ अहो!

दोहा

कोटि जन्म नृप-पद मिले, उनके जितने भोग।
इस दर्शनपर वारिये, जो नाशक भव-रोग॥

भक्ति आपकी चित्तमें, बनी रहे दिन रात।
भूलूँ एक न पल कभी, यह शुभ पद-जलजात॥"

'एवमस्तु' श्रीरामने, कहा प्रेमके साथ।
बिदा हुए तत्काल वे, करके भिलनि सनाथ॥

दुर्वासाजी अम्बरीषकी शरण आये

अम्बरीष

दोहा

जन्मा श्रीनाभागके, पुत्र एक विख्यात।
अम्बरीष अलिवर-रसिक, श्रीहरि-पद-जलजात ॥

कार्तिक एकादशी भूपने रक्खी ईश रिझानेको,
अति श्रद्धासे अपने पिछले पाप ताप कट जानेको।
अम्बरीषका अन्तः हरिके भजनेसे था शुद्ध घना,
गो, ब्राह्मण जन, अतिथि, दीनका परम भक्त वह विमल-मना ॥

सब धन्धोंसे निपट, तीन दिन व्रत-युत भजन किया उसने,
सहज सुलभ होनेपर दुर्लभ अघ-हर अमृत पिया उसने।
भक्त-मण्डली-मध्य बैठकर लाज छोड़ गुण-गान किया,
जगा रातभर छका प्रेममें, प्रीति-सरितमें स्नान किया ॥

हुआ सवेरा 'हरि हरि' करता लगा घूमने प्रेम-छका,
सरपट गतिसे दौड़ रहा मन, हरिके जपसे नहीं थका।
दुर्वासा आ गये अचानक, देख भूपने शिर नाया,
जान परम सौभाग्य, आज निज, भूप-दृगोंमें जल छाया ॥

दोहा

अहा ! आज पारण-दिवस, घरपर ऋषि मेहमान ।
अनायास ही आ गये, रीझे श्रीभगवान ॥
आसन ऋषिवरको दिया, बहुत प्रेमके साथ ।
'हे मुनीश ! आये भले, मुझको किया सनाथ ॥'

हाथ जोड़कर करी प्रार्थना भोजन करने हेतु वहीं,
सत्य प्रेमके आगे कोई 'ना' कर सकता भला कहीं !
मुनिने की स्वीकार प्रार्थना, यमुना-तट स्नानार्थ गये,
नृपके मन-मानसमें फिरते-तिरते भाव मराल नये ॥

हरिने कैसी की अनुकम्पा ऋषिको यहाँ उठा लाये,
पारणके दिन पाप निवारण कारण ऋषिवर घर आये ।
स्वयं खड़े हो-होकर राजा भोजन बनता देख रहे,
'देखो, त्रुटि रह जाय न कुछ भी' पाचक-गणसे यही कहे ॥

इधर द्वादशी एक घड़ी है, शेष त्रयोदशि आती है,
जो न द्वादशीमें पारण हो, व्यर्थ एकादशि जाती है ।
उधर महा-मुनि तर्पण, सन्ध्या, जपमें जा लवलीन हुए,
धर्म-विपदमें पड़े भूपवर विना नीरके मीन हुए ॥

'पारण जो न करूँ तो जाती एकादशी निरर्थक है,
जो न जिमाऊँ अतिथि प्रथम तो धर्म न रहता सार्थक है ।'
पूज्य ब्राह्मणोंसे नृपवरने पूछा 'क्या मैं करूँ अहो !
बात रहे औ धर्म न जावे, ऐसी कोई युक्ति कहो ॥'

दोहा

विप्र-वृन्दने सोचकर, कहा 'करो जल-पान।'
पारण नृपवरने किया, सोच समझ कल्यान ॥

सन्ध्यादिकसे निपट महामुनि चले झूमते नृप-घरको,
नृपने सविनय शीश नवाया, आते देख मुनीश्वरको।
मुनिने धरकर ध्यान विलोका, नृपने पारण किया अहो!
गर्व-धनुपपर क्रोध बाण धर, भूप लक्ष्य कर लिया अहो!

प्रथम सहज ही क्रोधी, दूजे, क्षुधा-प्रपीड़ित, तीजे तेज,
होंठ फरकने लगे क्रोधसे, बिखरा विकट जटा-बन्धेज।
दाँत पीसकर बोले, 'देखो' यह हरि-भक्त कहाता है,
धन-मदान्ध, अति ढीठ, धर्मको निर्भय यों ठुकराता है॥

अतिथि बना मैं इसका सो तो यमुना-तट बैठा भूखा'
यह महलोंमें बैठ जीमता, कैसा कठिन हृदय, रूखा?
नहीं अतिथि अपमान हुआ यह, इसके मदका गान हुआ।
नहीं धर्म-अपमान हुआ यह, है अधर्मका मान हुआ॥

नहीं, नहीं मैं अब ही इसको इसका मजा चखाता हूँ,
'देख देख रे! देख, तुझे मैं अपने हाथ दिखाता हूँ।'
देकर झटका एक क्रोधसे अपनी जटा उखाड़ी एक,
दुर्वासाने अपने हाथों भर ली दुखकी गाड़ी एक॥

दोहा

अम्बरीषपर छोड़ दी, कृत्या वह तत्काल।
प्रबल अनलकी झल सदृश, झपटी ले करवाल ॥
सम्मुख जोड़े हाथ युग, राजा खड़ा प्रशान्त।
हरि यह लीला देखकर, कब रह सकते शान्त ॥

चला सुदर्शन चक्र घूमता कृत्याका 'इतिकृत्य' किया,
प्रखर अनलसे कमल सदृश वह रक्षित अपना भृत्य किया।
हुआ शान्त अब भी न सुदर्शन दुर्वासापर टूट चला,
मुनि-पासे विपरीत पड़ गये, भगा, कि जाना अभी जला ॥

आगे हैं दुर्वासा पीछे चक्र सुदर्शन तेज भरा,
छिपनेको भी ठौर न पाई, मुनिने जाना, अभी मरा।
मेरु-गुफामें, भूमण्डलमें, नभमें, सात पतालोंमें,
सप्त सागरों, त्रैलोकोंमें, ढूँढ़ा सौ सौ तालोंमें ॥

गये हाँफते विधिके सम्मुख, 'भगवन्! रक्षा करो, करो,
शरणागत हूँ अभय-प्रदायक निजकर मम शिर धरो धरो।'
ब्रह्मा बोले हँसकर, 'मुनिवर, अच्छी आपद पीछे की!
मुझसे लेकर सर्व शक्तियाँ हैं सब उससे नीचेकी ॥

उसका दोषी हम न रख सकें, हम तो आज्ञाकारी हैं,
फिर तुम उसके भक्त-द्रोही इससे डरते भारी हैं।
हरि निज-दोषी नहीं देखते जैसे भक्त-द्रोहीको,
जहाँ पसीना पड़े भक्तका देते वहाँ स्व-लोहीको ॥

भलीभाँति हम हरिको जानें, फिर क्यों आपद् सिर ठावें,
मुनिवर, ठौर न यहाँ शरणको, इच्छा रही, जहाँ जावें।

दोहा

कोरा उत्तर श्रवणकर, विधि-मुखसे तत्काल।
दुर्वासा-आशा दली, हुआ विकल बेहाल॥

भगा तुरत ही जटा बखेरे भयसे तनकी सुध त्यागे,
देख, देख रे जगत्! देख यह गर्व जा रहा है भागे।
अहंकार जो हरिजन अपना हरिको सौंप दिया करते,
अम्बरीपकी भाँति उन्हींका श्रीहरि पक्ष लिया करते॥

गया जहाँ कैलाश-शिखरपर ध्यानावस्थित शंकर थे,
तेज त्रिशूल गड़ा था सम्मुख, सारे साज भयंकर थे।
जटा-जूटपर फण फैलाये, गर्ज रहा था प्रबल फणी,
भुजदण्डोंसे लिपट रहे थे सर्प, चस रही चक्षु-मणी॥

'जला जला हे भगवन्!' जब यह शब्द दूरसे कान पड़ा,
मदन-दहनकी याद दिलाई—हुँसरा शिवका बैल बड़ा।
ध्यानावस्थित शंकरके जा पद-कमलोंमें शिर नाया,
भयसे भारी विकल हुआ है, धूज रही थर्थर काया॥

'हे गिरीश! हे शम्भो! शूलिन्! हे शरणागतके सङ्गी!
त्राहि, त्राहि हे शर्व! डाल दो इधर कृपाकी भ्रू-भङ्गी।'
हरने खोले नेत्र, कहा 'हे मुनिवर! कैसे काँप रहे?'
'हे हर! मेरी रक्षा कर लो—चक्र सुदर्शन अभी दहे॥'

दोहा

'यहाँ चक्रके चोरको, नहीं छिपनको ठौर।
सेवक कैसे रख सके, निज स्वामीका चौर॥
जो मेरा चित चोर है, तू है उसका चोर।
चरण उसीके जा पकड़, भाग उसीकी ओर॥

पापीसे भी पापी अपने पापोंकी कर याद कभी,
रोकर हरिके चरण पकड़ ले, हरि अपनावें उसे तभी।
मान, लाज, छल-छद्म छोड़कर रोकर हरिकी ओर भगो,
हरिके ठगनेकी यह विधि है, तुम्हें बता दी, शीघ्र ठगो॥

हरिकी ओर चलोगे जितने पाप कटेंगे उतने ही,
हे मुनिवर, यह निश्चय जानो, दीनबन्धु हैं वे स्नेही।'
मुनिवर हरिकी शरण भगे झट, शिवको शीश नवा करके,
अब तो चले सुधा-सरवरको, गर्वधतूरा खा करके॥

परमधाम, वैकुण्ठ विराजें जहाँ चराचरके स्वामी,
सज्जन-आपद् सहज विनाशक, त्रासक असुर, गरुड़गामी।
हरिके चरणोंमें जा मुनिने अश्रु बहाते सिर टेका,
उष्ण अश्रु थे दुखित हृदयके, उरको भयने था सेंका॥

मुनि बोले 'हे नाथ! तुम्हारा मैंने जाना नहीं प्रताप,
भक्त आपका बहुत सताया, सिरपर है यह मेरे पाप।
पीछे पड़ा सुदर्शन मेरे, उरको पाप जलाता है,
त्राहि, त्राहि हे नाथ! जला मम तन मन सब कुछ जाता है॥

दोहा

नाथ ! आपके नामसे, नरक-भीति हो दूर ।
मैं शरणागत आपकी, करो कष्ट यह चूर ॥'

'हे ब्राह्मण ! मम भक्त हैं, प्यारे मुझे विशेष ।
वह मेरा ही शत्रु है, जो दे उनको क्लेश ॥
जन मेरे आधीन हैं, मैं उनके आधीन ।
कैसे तज दूँ मैं उन्हें, जो मुझ जलके मीन ॥

भक्त मुझे निज सर्वस देकर मुझको वश कर लेते हैं,
नारी पतिव्रता निज पति ज्यों, मेरा मन हर लेते हैं ।
मेरे भक्त न मुक्ति चाहते, मेरी सेवा तज करके,
अपनेको कृतकार्य मानते प्रतिपल मुझको भज करके ॥

मुनिवर, जाओ ! निज अपराध क्षमा करवाओ भूपतिसे,
है कल्याण इसीमें निश्चय जानो मेरी सम्मतिसे ।
सन्त महात्मा भक्तोंके उर कोमल होते हैं भारी,
क्षमा करेंगे तुरत तुम्हारा नृप अपराध दयाधारी ॥

भक्तोंका कुछ नहीं बिगड़ता उन्हें कष्ट पहुँचानेसे,
दुख पाते हैं दुखदाता ही भक्त अहेतु सतानेसे ।
मुनिवर ! शान्ति मिलेगी तब ही क्षमा-याचना करो वहाँ,
अब न विलम्ब करो बस ज्यादह, मत भटको मुनि, जहाँ तहाँ ॥'

मुनिने जा तत्काल भूपके पद्पद्मोंमें शिर नाया,
ब्राह्मण निज चरणोंमें देखा नृपको बहुत तरस आया।
मुनिका सब अपराध भूलकर आप हाथ मल पछताया,
मेरे कारण हाय! मुनीश्वर देखो कितना दुख पाया॥

दोहा

चक्र-शान्ति-हित नृपतिने, की विनती तत्काल।
चक्र-स्तुति करने लगे, भूपति परम दयाल॥

सवैया

हे खल-पुञ्ज-विनाशक चक्र! करो करुणा मुनि भाजत हारयो,
आपहि कीजै कृपा अब यापर तीनोंहि देवन याहि बिसारयो।
मींजत हाथ रह्यो पछितात सु आपुने गर्वसों आपो बिगारयो,
आय गयो शरणौ मुनिवर तब ऐसे अधीनको मारयो न मारयो

हे जनपालक चक्र! तुम्हें यह दास प्रणाम करे बहुबारी,
हे भगवानके अस्त्र महाप्रिय, दुष्टविनाशक, हे लयकारी।
हे शुभ दर्शन! चक्र सुदर्शन! भवभयभञ्जन विश्वविहारी,
राखिये,राखिये,तेजहिं रोक्यो न डारिये क्रोध किधौं चिनगारी।

दोहा

अबतक जो मैंने किये, दान, पुण्य, तप, कर्म।
वे मुनिकी रक्षा करें, जो सच्चा हो धर्म॥
इतना कहते ही अहो, चक्र हो गया शीत।
शान्ति मुनीश्वरको मिली, गद्गद हुए, अभीत॥

मुनि बोले हरि-भक्तोंकी मैं महिमा जानी आज अहो !
हरिको वश कर लिया जिन्होंने उनको क्या कुछ कठिन कहो ?
कौन कठिन है काम विश्वमें जिसे न हरिजन साध सकें ,
रहते हैं बेखबर विश्वसे हरि-रति मदिरा रहें छकें ॥

'धन्य धन्य' हे राजन् ! तुम हरि-भक्ति-सरितमें न्हाते हो ,
हरि-कल्पद्रुमकी छायामें बैठ त्रिताप नसाते हो ।
मुझपर की अनुकम्पा कितनी भूल गये अपराध महा !
चक्रानलसे मुझे बचाया धन्य दयालो ! भूप ! अहा !

सुनकर अपनी श्लाघा नृपको लज्जा-आँधीने घेरा,
अपनी श्लाघा सुनकर होता मुदित नहीं हरिका चेरा ।
हरि-जन सब ही कामोंमें हैं हरिका हाथ लखा करते,
अपने किये परम कार्योंकी श्लाघा सुनते हैं डरते ॥

भोजन करने हेतु नृपतिने मुनि-चरणोंमें सिर नाया ,
ऋषिने भोजन किया तुष्ट हो, रोम-रोममें सुख छाया ।
आशिर्वाद दिया नृपवरको 'राजन् ! यह शुभ यश तेरा ,
गावेंगी सब काल देवियाँ जानो सत्य वचन मेरा ॥'

दोहा

भोजन करवा भूपको, ले आज्ञा तत्काल ।
ब्रह्मलोक ऋषिवर गये, रच इतिहास रसाल ॥

अजामिल

दोहा

सुनो अजामिलकी कथा, राजन्[1] ! देकर ध्यान।
नाम-नाव आरूढ़ हो, भव-नद तरा महान ॥

राजन् ! ऐसा कौन रोग है जिसका हो उपचार नहीं ?
करनेपर उद्योग, विघ्नके मिटते लगती बार नहीं।
हैं पुरुषार्थ रूपमें हरि ही, इनको त्यागे भद्र कहाँ ?
तटका कर्कट क्यों छोड़ेगा, देगा झाल समुद्र जहाँ ?

तन मन और वचनसे जो कुछ पातक होते रहते हैं,
प्रायश्चित्त बिना वे प्रतिपल रह रह दिलको दहते हैं।
पातक-दाग़ मिटानेको ही हरि-पद-सरसिज साबुन हैं,
श्रीहरिके उस दया-भवनमें होते अवगुन भी गुन हैं॥

बड़ा मनुज ही जाने पावे ऐसा वह दरबार नहीं,
सबकी गति है अटल वहाँपर निर्दय पहरेदार नहीं।
हरि-चरणोंमें जानेका जो नर करता पुरुषार्थ नहीं,
मनुज देहके पानेका वह समझा अर्थ यथार्थ नहीं॥

जिसने हरिको भुला दिया है, अन्य याद रखनेसे क्या ?
जिसने पीयी सुधा नहीं है अन्य स्वाद चखनेसे क्या ?
हरिके नाम-विटपकी छायाका जिसको आधार नहीं,
त्रैतापोंकी प्रखर धूपका कर सकता प्रतिकार नहीं॥

---

1 महाराजा परीक्षितके प्रति शुकदेवजीके वचन।

अजामिल-उद्धार

पृष्ठ ८६

दोहा

हरि-चरणोंमें मन लगा, रक्खे अति उत्साह ।
सहज कर्म करता रहे, पावे भव-नद थाह ॥
सहज कर्म शुभ पथ्य युत, तज कुपथ्य दुर्भोग ।
बिन ओषधि भी जीवके नशते यों सब रोग ॥

महा अधम-से-अधम पुरुष भी महापुरुष-पद पाता है,
हो करके निष्कपट, विकल जो हरिके सम्मुख जाता है ।
हरिका आश्रय जिसे न नाशे ऐसा कोई पाप नहीं,
सुतको रोता देख न पिघले ऐसा कोई बाप नहीं ॥

हरिसे रहना विमुख सर्वदा सबसे बढ़कर पाप यही,
हरिके सम्मुख हो जानेपर रहते पाप-कलाप नहीं ।
कल्प कल्पके पापोंके फल एक पलकमें भुगतावे,
ऐसा है वह महा दयामय, क्या-से-क्या कर दिखलावे ॥

उसका नाम दयानिधि है जब क्यों न दया वह लावेगा ?
पातक-भीत शरण-आयेको कहो क्यों न अपनावेगा ?
राजन् ! उसकी कृपा-वारिसे जीव-विटप फल-फूल रहे,
भूल यही है, निजको फूला देख उसे हैं भूल रहे ॥

होते सब अनुकूल उसीपर जिसपर हरि अनुकूल रहे,
बाल न बाँका हो सकता है, अखिल विश्व प्रतिकूल रहे ।
जिसने हरिको हृदय दे दिया यमके भयसे विगत हुआ,
मुक्त हुआ वह अनायास ही, सपना-सा सब जगत् हुआ ॥

दोहा

कान्यकुब्ज वर देशमें, विप्र अजामिल एक।
लिखा-पढ़ा सद्गुण-सदन, धर्माधर्म विवेक ॥
जप, तप, व्रत, परहित-निरत, पातक-विरत सुजान।
जनक, जननि, जगदीशका, सात्त्विक भक्त महान ॥

एक दिवस वह कुसुम कुशादिक लेकर वनसे आता था,
सत्त्वगुणी वह शान्त, सुधीवर आता हरि-गुण गाता था।
देखा मगमें एक अचानक दृश्य काम-उद्दीपनका,
मानो परदा पलट गया है आज विप्रके जीवनका ॥

देखा एक युवतिके सँगमें युवक विषय-क्रीड़ा करता,
मद पीकर उन्मत्त हुआ वह तनिक नहीं व्रीड़ा करता।
वह मद-छाकी युवति कामके वशमें तन-सुधि भूल रही,
तन-पट खिसका, अर्धमुँदे दृग, मदन-नशेमें भूल रही ॥

वह वेश्या अति रूपवती थी ब्राह्मणका मन खींच लिया,
रोका बहुत चित्तको उसने, पर मन्मथने विवश किया।
गया सतोगुण उसका जैसे वायु-विताड़ित मेघ यथा,
मानो जकड़ा उसे किसीने खड़ा सह रहा मदन-व्यथा ॥

जैसे अति स्वादिष्ट दुग्धको फाड़ दिया करता अमचूर,
जैसे धर्म-कर्मको पलमें विनशा देता लोभी क्रूर।
जैसे भरी सभामें खल जन विघ्नरूप हो जाता है,
पकी-पकाई खेतीको ज्यों पलमें उपल नशाता है ॥

दोहा

हुआ विप्रके चित्त यों, कामोदीपन-दृश्य।
धर्म-कर्म सब भूलकर, हुआ कामिनी-वश्य॥
अब तो उसके मिलनकी, लगी लालसा खूब।
द्विज-मन-मीन रहा अहा! काम-सरोवर डूब॥

धर्म-पत्निसे अब तो द्विजका मन बिलकुल ही दूर हुआ,
एक लग्न उस नयी प्रियाकी, फिरे नशेमें चूर हुआ।
द्विजका चित्त-पतङ्ग कामिनी छवि-डोरीसे उड़ा रही,
सैनोंकी सै दे-देकर वह लज्जा-बन्धन तुड़ा रही॥

तन, मन, धन सब उसके अर्पण किया कामके पागलने,
वेश्या-दीप-शिखामें प्रस्तुत हुआ शलभ-सम वह जलने।
करके वेश्या-संग पङ्क-सी उसने आप जला डाली,
धर्म-पत्नि नव त्याग मराली, अपना ली नागिन काली॥

भूल गया निज कर्म-धर्म सब पर्दा ऐसा कड़ा पड़ा,
जगत न दीखा जबसे तियका रूपाञ्जन डल गया कड़ा।
छूटे सहज पट-कर्म हाय! अब दुष्कर्मोंमें लीन हुआ,
अन्तःकरण मलीन हो गया दासीके आधीन हुआ॥

ज्यों-ज्यों मन विषयोंमें विरमा त्यों-त्यों धनकी चाह बढ़ी,
पातक-पङ्कज ऊपर आया ज्यों-ज्यों मन-सर झाल चढ़ी।
द्यूतादिक दुरुपाय-रज्जुसे दैव-कूपसे धन-जलको-
काढ़ पिया चाहे यह पागल, कौन सुझाये इस खलको?

दोहा

गणिका-तन-शीशी सुघर, कर रति-मदिरा पान ।
पाप-नशा चढ़ कर हुआ, द्विज उन्मत्त महान ॥

विषय-विलासोंमें यों बीता अनजाने वय-भाग बड़ा,
शक्ति क्षीण हो गयी, देहपर रोगोंका दुर्जाल पड़ा।
रोग-जालमें काल-व्याधने द्विज-मृग फाँदा पुष्ट बड़ा,
भरता है दिन रात 'आह' अब खटिया ऊपर पड़ा-पड़ा ॥

राम-नाम अब जपता कैसे जब पहले था काम जपा,
अब खटियामें ताप तप रहा, पहले सात्त्विक तप न तपा ।
यद्यपि पुत्र हैं दश, अति दृढ़ तन, पर पीड़ा न बँटा सकते,
दश दर्वाजे घिरे मृत्युसे उसको वे न हटा सकते ॥

तन-वन, असु-मृग, काल-व्याधने रोग-जालमें फाँद लिये,
ऐसी स्थितिमें कौन सहायक विन हरिको आवाज दिये ।
था जिसके हित सर्वस त्यागा पास खड़ी वह रोती है,
हँस-हँस तन, मन, धन-ग्रसिनी वह कुछ न सहायक होती है ॥

अब द्विजके दुष्कर्म-कुफल सब मूर्तिमान आ खड़े हुए,
दे-देकर अति दुःख भयङ्कर स्वास-हरनको अड़े हुए ।
यम-किङ्कर दृढ़ पाश दंडधर अरुण नेत्र विकराल महा,
देखे खटिया पास खड़े जब अजामेल बेहाल हुआ ॥

दोहा

यमदूतोंने शीघ्र जब, डाला गलमें पाश।
सुसंस्कार वश हो गया, उर हरि-नाम प्रकाश॥

'हे नारायण! हे नारायण!!' द्विज बोला यों विकल हुआ,
छोटा सुत जो नारायण था उसने आ झट शीश छुआ।
उधर स्वामिका नाम श्रवणकर पार्षद आकर खड़े हुए,
सुन्दर वेष सुघड़ तन जिनके हैं रत्नोंसे जड़े हुए॥

सिरपर श्रेष्ठ किरीट जगमगें करमें कङ्कण पड़े हुए,
पीत वसन मन-हरन सर्वथा, छविके हाथों गढ़े हुए।
यमदूतोंसे बोले 'इसको छोड़ो अपने घर जाओ,
सभी भाँति है पावन यह तो, इसे न अब भय दिखलाओ॥'

विस्मित हो यम-किङ्कर बोले–'कौन' कहाँसे आये हो?
क्या करनेको, हमें बताओ, जो तुम आये धाये हो।
क्यों हमको तुम रोक रहे हो, हम जग-शासकके किङ्कर,
है यह पापी-पुरुष इसे हम ले जावेंगे अब सत्वर॥

यम-नगरीमें इसे यातना हम दिलवायेंगे भारी,
है यह अत्याचारी, इसकी बातें लिखी पड़ी सारी।
सुन्दर पुरुषो! धर्म-कार्यमें क्यों तुम बाधा करते हो?
ऐसे अधम जनोंमें क्यों तुम नाहक साहस भरते हो?

दोहा

इसे न अब पापी कहो, हे यम-किङ्कर-वृन्द !
इसका मन हरिमें लगा, करो इसे स्वच्छन्द ॥
जो तुम सेवक धर्मके, कहो धर्मका तत्व !
लक्षण कहो अधर्मके, पालो निज दूतत्व ॥
पड़ा अजामिल भूमिपर, 'नारायण' सुत पास।
नारायण-पार्षद खड़े, गल यम-किङ्कर-पाश ॥

'हे पार्षद्गण ! धर्म वही है जिसे वेद्ने गाया है,
है अधर्म वह जिसे वेद्ने त्याज्य कर्म बतलाया है।
वेद् कहो या ईश्वर इसमें किंचित् भी तो भेद नहीं,
नृपकी आत्मा राज्य-नियममें जैसे रहती सही सही ॥

जगत्-पिता सम्राट् श्रेष्ठ है, वेद्-नियम है, जीव-प्रजा,
जो नियमोंको तोड़ेगा, वह पावेगा कैसे न सजा ?
रवि,शशि,अनल,पवन,नभ,संध्या,दिवस,निशा,जल,धर्म,दिशा।
यही जीव-कृत कर्मोंके हैं साक्षी, समझो नहीं मृषा ॥

तनु-धारीको कर्म किये बिन एक विपल भी नहीं सरे,
कर्म शुभाशुभ दोनों होते, कौन पुरुष जो नहीं करे ?
कर्म-बीज पड़ जानेपर जो नहीं उगे यह बात नहीं;
कर्मोंके फल चखने होंगे नहीं चखे, यह हाथ नहीं ॥

दुष्कर्मोंके फल देनेको है प्रस्तुत यमराज सदा,
किसी जीवका कर्म एक भी उनसे छानी नहीं कदा।
अज्ञ जीव इस व्यक्त देह बिन पूर्वापर क्या जान सके ?
निद्रित प्राणी स्वप्न देहसे जागृत-तन क्या मान सके ?

दोहा

पर्दा पड़ता मृत्युका, नश जाता सब ज्ञान ।
अपने पिछले जन्मसे, हो जाता अज्ञान ॥

सत, रज, तमकी सृष्टि जीवको हर्ष शोक देनेवाली,
सत्त्व-शक्ति है सहज जीवको ऊर्ध्व-लोक देनेवाली।
कामादिक छः प्रबल शत्रुओंसे यह जीव घिरा बेबश,
उनके द्वारा कर्म-जालमें फँस जाता है यह हँस हँस ॥

पूर्वजन्म-कृत कर्मज है जो 'दैव' वही तो कारण है,
सूक्ष्म तथा इस स्थूल देहका, उसका कठिन निवारण है।
जीव इन्हीं दो देहोंसे ही दुख-सुख भोगा करता है,
इसका यह आदर्श अजामिल पड़ा सिसकियाँ भरता है ॥

इसने सब कुछ अच्छा करके हाथीका-सा स्नान किया,
वेश्याके सँग रमा रात दिन, तिसपर मदिरा पान किया।
साँपिनने डस लिया प्रथम, फिर घोंट धतूरा पी जावे,
ऐसेका उपचारक भी तो जगमें ठट्ठा करवावे ॥

अब तो इसको दाव दवा है, वैद्यराज यमराज कड़े,
तप्त तैलसे हम ही इसका, विष तारेंगे खड़े खड़े।
यहीं अजामिल भोग यातना, पाप-निरुज हो जायेगा,
भूले अपने उसी मार्गको फिरसे यह अपनायेगा ॥'

दोहा

पड़ा अजामिल सुन रहा, यह सब उनकी बात।
पल पल कटती कल्प सम, भयसे कम्पित गात॥

विष्णुदूतोंका यमदूतोंके प्रति उत्तर

हे यम-किङ्करवृन्द! तुम्हारा कथन उचित है सभी प्रकार,
पापी जीवोंको नित दण्डित करनेका तुमको अधिकार।
यमका दण्ड न जगमें हो तो जीव निरंकुश हो जावें,
पातक-पथ सब मुक्त हो चलें, पुण्य-पन्थ सब खो जावें॥

राज्य-कार्य सञ्चालनको ज्यों होते नाना भाँति विभाग,
शासन, न्याय, प्रजा-संरक्षण, शिक्षण आदिक चुंगी लाग।
इसी भाँति जगदीश-राज्यमें यमको शासनका अधिकार,
उत्पथ-गामीको बिन पूछे तुमको त्रासनका अधिकार॥

इसी भाँति है हमें जीवको मुक्ति दिलानेका अधिकार,
किसे मारनेका हक़ है तो किसे जिलानेका अधिकार।
जिसकी आज्ञा रवि, विधु, विधि, हर, नियम-सहित यम पाल रहे,
जिसकी साँकलमें बँध सागर पानी ठौर उछाल रहे॥

जिसकी पलक-पतनसे होता प्रलय, खोलते जग खिलता,
जिसकी आज्ञा बिना वृक्षका पत्तातक न तनिक हिलता।
की है उसकी भक्ति इसीने प्रथमावस्थामें भारी,
लिया नाम फिर अन्त समयमें, क्या यह यमपुर अधिकारी?

दोहा

एक बार भी जो कढ़े, अन्तकालमें नाम।
शरणागत उसको समझ, देते हरि निज धाम ॥
जनक, जननि, द्विज, नारि, नृप, आदिक गोवध पाप।
तम-नाशन-हित रवि यथा, हरिका नाम प्रताप ॥
जाति पतित हो, म्लेच्छ हो, हो सब भाँति अशुद्ध।
श्रीहरि-नाम सुजापसे, होता सत्वर शुद्ध ॥

वर्षाके हो जानेसे ज्यों भूमि शुद्ध हो जाती है,
जैसे झंझा-वायु द्रुमोंको जड़ समेत ले जाती है।
अति कर्कटको प्रबल अनल ज्यों भस्मीभूत बनाती है,
जलसे विचलित जनको जैसे नौका तट दिखलाती है ॥

वेगवती सरिता ज्यों तट-तरु सागरमें ले जाती है,
त्यों हरितक हरिनाम निसैनी पतितोंको पहुँचाती है।
इसो नियमसे हे यमदूतो ! अब निष्पाप अजामिल है,
पीड़न इसका बहुत हो चुका रुज-कोल्हूमें तन-तिल है ॥

बहुत रुँध चुका, अब तुम इसको दुख देते क्यों खड़े-खड़े,
सुन सुन तीखे वचन तुम्हारे भय पीड़ित यह पड़े-पड़े।
भोग चुका निज कर्मोंके फल घोर यन्त्रणा यहीं सही,
अति विकराल तुम्हारे दर्शन पीड़ा इसने सही लही ॥

अब इसके सत्कर्मोंके फल देनेको हम आये हैं,
जिसने तुम्हें पठाया उसके पतिने हमें पठाये हैं।
राजन्, अन्तर्द्धान हो गये, यम-चर होकर खिसियाने,
स्वस्थ हो गया विप्र उसी क्षण यमके दूत गये जाने॥

दोहा

गद्गद होकर प्रेममें, जोड़े दोनों हाथ।
हरि-चर-चरणोंमें दिया, टेक विनय-युत माथ॥
प्रेम विवश कुछ भी विनय, कर न सका यम-मुक्त।
शीश परस हरि गुप्त-चर, हुए तुरत ही गुप्त॥

देखो हरिकी दया अधमको किस अवसरपर अपनाया,
हुई सहायक जहाँ न जाया, मा-जाया, अपना जाया।
मैंने हरिको भजा कभी था, भूल रहा था वर्षोंसे,
कब आशा थी पातक-मेरु तुलेगा ऐसे सर्सोंसे॥

हरिको ही कुछ दया आ गयी, मेरे अवगुण लखे नहीं,
अवगुण जो लख लेते मेरे, ठौर नरकमें थी न कहीं।
ऐसा कोई पाप नहीं जो मुझ पापीने नहीं किया,
हाय! कलेजा अब फटता है, वृद्ध पिताको कष्ट दिया॥

कीटादिकका खाद्य गात्र यह इसके हित क्या-क्या न किया?
पातिव्रत-रत धर्मपत्निका हा! मैंने अपमान किया।
धन्य ब्राह्मणी फिर भी तूने अपना धर्म नहीं छोड़ा,
मैंने तोड़ पदोंसे फैंकी, तूने नेह नहीं तोड़ा॥

मेरी वृद्धा माता रोती रोती ही परलोक बसी,
मैंने उसकी कभी न सुध ली, बुद्धि रही नित पाप-ग्रसी।
ब्रह्मतेजको नष्ट किया हा ! फँस शूद्राके नैनोंमें,
सुधा-सदृश हरि-नाम भुलाया, फँसकर विषके वैनोंमें॥

दोहा

शूद्रासे उत्पन्न यह, दश सुत शत्रु-समान।
कोई जन मेरा नहीं बिना एक भगवान॥
अब यह तन अर्पित किया, उसी स्वामिके हेत।
जिसके किङ्कर देखकर, यम-किङ्कर-मुख श्वेत॥

अब मैं हरि-पद-अरविन्दोंका होकर अचल मिलिन्द रहूँ,
अब मैं संतत संत-समागम-सरवरका अरविन्द रहूँ।
अब मैं हरि-पद-रति-असिवरसे 'मैं, मम' ग्रन्थि छुड़ाऊँगा,
अब मैं हरिकी शरण-पवनसे माया-मेघ उड़ाऊँगा॥

अब मैं सत्य-विवेक-सिन्धुमें मन-पाषाण निमग्न करूँ,
अब मैं सेवा-नाव बनाकर यह दुस्तर भवसिन्धु तरूँ।
हरिने मेरे दोष भुलाकर मुझको फिर अवकाश दिया;
अब भी जो मैं नहीं उठा तो मानों अपना नाश किया॥

हुआ तुरत वैराग्य प्रबलतम, पुत्र शत्रु-सम हुए सभी,
संग्रहणी-सी गृहिणी भासी, सदन मशान-समान अभी।
होकर सब ही भाँति स्वस्थ वह हरिद्वारको चला गया,
हरि-पद-रत, भव-त्यक्त भक्त वह पातक अपने जला गया॥

हरिद्वारपर जाकर उसने योगासन दृढ़ लगा लिया,
हटा इन्द्रियोंको विषयोंसे मन आत्मामें पगा दिया।
हो एकाग्र चित्तको जोड़ा, आत्माको परमात्मासे,
भिन्न न देखा कुछ भी उसने परमात्मामय आत्मासे॥

दोहा

सुमन-माल गज-कण्ठसे, छुटे सहज त्यों प्रान।
हरिपुरको हरि-रूप वह, बैठ चला सुविमान॥

नाम-नाव आरूढ़ हुआ वह भव-नद पार हुआ पलमें,
हरिके आश्रय हो जानेपर तपा न नरकोंकी झलमें।
राजन्! पाप-विपिन है तबतक, जबतक भक्ति न ज्वाल जगे,
तबतक दुख-सुख, भ्रम है, जबतक सुप्त न ज्ञान-मराल जगे॥

तबतक तीनों ताप, न जबतक हरि-चरणोंकी छाँह गहे,
तबतक भवनद-मग्न, न जबतक हरि करुणाकर बाँह गहे।
राजन्! जाकर यमदूतोंने यमसे जो संवाद कहा,
उसको सुनिये, जो कुछ यमने उन्हें कहा हितवाद महा॥

यमकिङ्कर अति दुःखित, लज्जित, विस्मित आदिक भाव भरे ;
यमसे कहने लगे, प्रभो ! हम दौड़-दौड़ ही वृथा मरे ।
क्या तुमसे भी प्रबल दूसरा जगमें कोई शासक है ?
जिसका शस्त्र हमारी भारी प्राणी-भीति-विनाशक है ॥

आज उसीके गुप्तचरोंने नीचा हमें दिखाया है,
समझ स्वामिका सेवक हमसे बल-युत उसे छुड़ाया है ॥
'नारायण' इस नाममात्रसे उसे बचानेको आये,
उन्हें देखकर एक साथ ही वदन हमारे मुर्झाये ॥

दोहा

कृपया नाथ बताइये, वे थे किसके दूत ?
सुन्दर, सात्त्विक, दिव्य तनु, धार्मिक शक्ति अकूत ॥
सुनकर यों वचनावली, विहँसे यम-भगवान ।
संशय-नाशक वचन वर, बोले सुधा-समान ॥

हे किङ्करगण ! सचराचरका स्वामि और है एक बड़ा,
उसकी मायामें यह सब जग बैल-सदृश है नथा पड़ा ।
यह संसार समग्र उसीमें ओत-प्रोत है भरा हुआ,
विश्व-यन्त्र यह उस यन्त्रीसे सञ्चालित है करा हुआ ॥

जीवोंकी तो कथा कौन है, हम उसके आधीन सभी,
उसकी तनिक अवज्ञा भी तो हम कर सकते नहीं कभी।
मैं,महेन्द्र,रवि,चन्द्र,महेश्वर,वरुण,अनल,विधि,अनिल तथा,
सिद्ध, साध्यगण, सुरगण आदिक पालें उसकी अटल प्रथा॥

हम सबको उस विश्वम्भरका भेद न पूरा पाता है,
रहें घूमते उसी भाँति हम जैसे हमें घुमाता है।
उन श्रीहरिके दूत उन्हींके सदृश वेषधारी होते,
दया, क्षमा, गुणयुक्त उन्हींसे जीव मुक्तकारी होते॥

घूमा करते भूमण्डलमें जीवोंकी सुध लेनेको,
सत्कर्मी जीवोंको प्रतिपल बिन माँगे सुख देनेको।
हरि-भक्तोंको रिपुओंसे या मुझसे निर्भय करनेको,
भ्रमते रहते रात-दिवस वे भक्तोंके दुख हरनेको॥

दोहा

हरिके सच्चे मर्मका, नहीं किसीको ज्ञान।
त्रिगुणात्मककी सृष्टिसे, है वह दूर महान॥
शुद्ध भागवत धर्मका, हम बारहको ज्ञान।
इसीलिये हम पालते, उनके सकल विधान॥

उसके प्यारे भक्तोंपर है मेरा नहीं तनिक अधिकार,
मेरा दण्ड वहाँ कुण्ठित है जहाँ तनिक हरिनाम-प्रचार।
मेरा दण्ड वहींतक पहुँचे जहाँ पापका है अधिकार,
हरिका नाम सुखाता है बस, पलमें पातक पारावार॥

दूतवृन्द! वे हरिके किङ्कर हरि-समान हैं पूज्य सदा,
रखते हैं वे करमें निशदिन वही भक्त-भय-हरण गदा।
राजन्! ऐसा कहते-कहते यमने अपने दृग मींचे,
प्रेम-नीरसे अपने उरके सुन्दर रोम-द्रुम सींचे॥

कहा धन्य हैं वे जन जो हरिनाम रात-दिन जपते हैं,
नरकानलमें सुपनेमें भी वे जन कभी न तपते हैं।
विष्णुलोकके अधिकारी हैं, पुण्यात्मा वे भारी हैं,
जिनकी हरिमें भक्ति वही जन माया-दल-संहारी हैं॥

रहे ध्यान यह तुम्हें, भविष्यत्में न भुला देना इसको,
तुम भग आना, हरिके पार्षद जब लेने आवें जिसको।
राजन्! यमने समझाकर सब, दूतोंका सन्देह हरा,
बतलाकर हरिका प्रभाव सब, सबके उरमें भाव भरा॥

कुन्ती

दोहा

जो रणमें बांधव मरे, देने उनको नीर।
कृष्णसहित पांडव सकल, पहुँचे गङ्गा-तीर ॥

भागीरथी-तटपर तिलाञ्जलिकी क्रिया होने लगी,
निजप्रिय जनोंको याद कर-कर नारियाँ रोने लगीं।
धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर, कुन्ती, युधिष्ठिर भूप भी,
रोने लगे वे भी, न थे जो स्वप्नमें रोते कभी ॥

उस काल ऋषि-मुनि आदि भी निज विज्ञता भूले सभी,
होते द्रवित सहृदय सुजन परको दुखित लखते जभी।
ऐसे समयमें धैर्य रखना क्या भला हँस-खेल है?
कढ़ती स्वयं ही 'आह' गड़ता वक्षमें जब सेल है ॥

सहृदय-शिरोमणि योग-निधि श्रीकृष्ण समझाने लगे,
उनको वहाँपर विश्व-रचना-तत्त्व दरशाने लगे।
संसारकी निःसारताका चित्र खींच खड़ा किया,
फिर कर्मका वह मर्म खोला, सुन प्रसन्न हुआ हिया ॥

यह क्या हुआ देखो अभी जो रो रहे थे, हँस पड़े,
सौभाग्यसे ही विश्वमें मिलते किसीको गुरु बड़े।
समझा-बुझा कर शान्त सबको श्याम यों कहने लगे,
'आज्ञा मुझे हो द्वारकाकी' सुन सभी मानों ठगे॥

दोहा

व्यासादिकको पूज कर, पूजित होकर आप।
उद्धव-सात्यकि-युत चले, मेट स्वजन-सन्ताप॥

देखा अचानक सामने अबला चली है आ रही,
अभिमन्यु-भार्या उत्तरा उरमें अधिक घबरा रही।
मानों बधिक-बाधित विकल है हाँफती आती मृगी,
निज देहकी सुध-बुध नहीं थी, वंश-चिन्तामें पगी॥

हे देव-देव! जगत्पते! करुणानिधे! रक्षा करो,
मैं आपकी हूँ अनुचरी, हरि! शीघ्र यह सङ्कट हरो।
तुम निर्बलोंके बल, अनाथोंके दयामय! नाथ हो,
आपत्तिमें शरणागतोंका तुम बँटाते हाथ हो॥

जिसका न कोई विश्वमें उसके प्रभो! तुम ही धनी,
तुम जान लो हे नाथ! विपदा आज जो मुझपर बनी।
यह तप्त लोहेका भयंकर बाण जो है आ रहा,
मम गर्भ छोड़ेगा नहीं है दुःख यह मुझको महा॥

'गर्भस्थ शिशु बच जाय तो चिन्ता न मुझको प्राणकी;
यों उत्तरा कह रो पड़ी हरिसे विनयकर त्राणकी।
निज दुःख-गाथा विश्वमें कहना नहीं प्रत्येकसे,
क्या लाभ जन-जन-पास रोनेसे न कुछ विपदा नसे॥

दोहा

अपना दुख जो डाल दे करुणानिधिके कान।
उसके सब संकट कटें, निश्चय करके जान॥

तत्काल ही श्रीकृष्णने अबला-विपद वह जान ली,
बस, भक्त-वत्सलने वही विपदा स्वयंपर मान ली!
श्रीकृष्णने जाना अहो! गुरु-पुत्रका यह अस्त्र है,
पांडव-सुवंश-विनाश-कारी यह महान कुशस्त्र है॥

उस ओर पाँचों पांडवोंपर पाँच छूटे बाण थे,
उनसे महा विचलित हुए वे कर रहे निज त्राण थे।
आकर वहाँ इस भाँति विपदा एक सँग उनपर पड़ी,
सब ओरसे ही घेरती जब घेरती दुखदा घड़ी॥

उस काल रक्षा कौन किसकी कर सके वाचक! कहो?
संकट-समयमें धैर्य धर कर विश्वपतिके पद गहो।
भगवानने देखा कि भक्तोंपर विपद है छा रही,
घबरा रहे हैं आज प्रिय, तृण-तुल्य इनको है मही॥

उत्तरा-गर्भ-रक्षण

झट उत्तराके गर्भमें निज योग-मायासे गये,
रक्षित किया अर्भक अहो! हैं खेल प्रभुके नित नये।
उस ओर अपने चक्रसे वे पञ्चशर खंडित किये,
खंडित किया गुरु-पुत्र-मद, पांडव समर-पंडित किये॥

दोहा

खंडन मंडनका किया, एक चक्रसे काम।
क्या कुछ कर सकते नहीं, हैं समर्थ घनश्याम॥

अति प्रेमसे फिर उत्तराको दी बहुत ही सान्त्वना,
निर्भय किये प्रिय वीर पांडव वीर-वाक्य सुना-सुना।
भगवान जो चाहे करें कुछ भी कठिन उनको नहीं,
आपत्तिमें श्रीहरि कभी भी भूलते जनको नहीं॥

रणमें जिताये वीर पांडव आप बनकर सारथी,
लाखों खपाये शस्त्रधारी धीर वीर महारथी।
जब-जब पड़ी है भीर भक्तोंपर तभी रक्षित किये,
हरिने सदा ही सेवकोंके कष्ट निज सिरपर लिये॥

ब्रह्मास्त्रके दुर्वारसे इस गर्भको रक्षित किया,
किस-किस जगहपर पांडवोंका है न हरिने हित किया?
फिर भी बड़ाई पांडवोंकी आप ही करते रहे,
इस भाँति भक्तोंका सदा हरि चित्त हैं हरते रहे॥

जिस स्थानपर श्रीकृष्णका अश्वोंसहित रथ था खड़ा,
नर-नारियोंका उस जगहपर लग गया मेला बड़ा।
वे लोग सब हर्षित हुए, छवि देखने हरिकी लगे,
सब ही पगे अति प्रेममें मानों सुकृत उनके जगे॥

कुन्तीका विनय करना

दोहा

जब यह कुन्तीको हुआ विदित सकल वृत्तान्त।
मिलने आई कृष्णसे होती मुदित नितान्त॥

'इस कृष्णने हमपर अहो! उपकार कितने हैं किये,
फिर भी अभीतक देखती हूँ घर किये जाता हिये।'
आ, कृष्णके पैरों पड़ी प्रेमाश्रु वर्षाती हुई,
उपकार करती याद, बारम्बार हर्षाती हुई॥

गद्गद गिरा रोमाञ्च तनु, तनकी भुला दी सुध सभी
गतज्ञान होनेपर कहो! उद्गार क्या रुकते कभी?
'हे सच्चिदानँद! गोपते! हे ज्ञानरूप! जगद्धनी,
हे ज्ञानघन! इस विश्वपर माया-तड़ित तेरी तनी॥

माया-यवनिकामें अगोचर तुम छिपे रहते तथा,
है अन्य पुरुष न देख सकता ऐन्द्रजालिकको यथा।
इन इन्द्रियोंपर आपका अधिकार सब विधि श्याम! है,
हे कृष्ण! करुणाधाम! तुमको बार-बार प्रणाम है॥

इन इन्द्रियोंके दुर्विषयकी वासनाओंमें फँसे,
प्राणी तुम्हें कैसे लखें, दुष्कर्म-कीचड़में धँसे !
प्रिय परमहंसोंके लिये अवतार यह तुमने लिया,
हम नारियाँ जानें भला क्या खेल तुमने है किया !

दोहा

कमल-माल-धर ! कमल-पद ! कमल-नेत्र ! घनश्याम ।
कमल-नाभ ! कमला-पते ! अगणित तुम्हें प्रणाम ॥

हे वासुदेव ! कहाँ-कहाँ तुमसे न हम रक्षित हुए !
सौ वार क्या रक्खे न तुमने कालसे भक्षित हुए !
जिस भाँति माता देवकीको कंससे रक्षित किया,
उस भाँति वा उससे अधिक तुमने हमारा हित किया ॥

हम जल मरे होते कभीके, भस्म भी होती कहाँ ?
लाक्षा-भवनमें, आप जो करते सहाय नहीं वहाँ ।
हमको हिडम्बी-बाढ़में बहते तुम्हींने रख लिया,
दुर्योधनी-दुर्दाहसे हरि ! त्राण तुमने ही किया ॥

वनवाससे भी कुशल-युत हम लौट सकते थे कहीं ?
गोविन्द ! जो तुम ध्यान पल-पल उस समय रखते नहीं ।
एकसे भी एक बढ़कर वीरवर जिस ओर था,
संसार था साथी बना दल-बल सभीका ज़ोर था ॥

फिर पाँच जन उनसे लड़ें यह युद्ध क्या ? उपहास है !
उपहासका तुमने किया सच्चा सरल इतिहास है !
ब्रह्मास्त्रसे त्यों आज भी तुमने हमें हरि रख लिया,
हे देवकी-नन्दन ! सदा तुमने हमारा हित किया ॥

दोहा

निराधारके तुम सदा, एकमात्र आधार ।
नमस्कार तुमको हरे, मेरा बारम्बार ॥

तोटक

हरि आप सहायक नित्य रहे, दुख-मग्न हुए तब आ निबहे,
अब क्या हम और विशेष कहें, पड़ते दुख यों नव नित्य रहें ।

सुखमें न तुम्हें जन याद करे, अभिमान करे, बकवाद करे,
धन-यौवनका, बलका, तनका, गुरु-गौरवका, मतिका, जनका ।
मद-अन्ध बने, युग नेत्र मिचें, सब जीव उसे अति तुच्छ जँचें,
जबलौं न लखे सचराचरमें, तुमको तबलौं नर व्यर्थ भ्रमें ॥

नित शेष, सुरेश, महेश जपैं, दिन-रात ऋषी-मुनि घोर तपैं,
प्रभुके भयसे रवि-चन्द्र भ्रमैं, असुरादि महाभय मान नमैं ।
सम-दृष्टि सदा, अरि-मित्र नहीं, सब ठौर विराजित व्योम मही,
नहिं आदि कहीं, नहिं अन्त कहीं, तुलसी तुमसों महि छाय रही ॥

दोहा

जानी जाय न आपकी, माया अपरम्पार।
बारम्बार प्रणाम हरि! जय, जय, जगदाधार!॥

माया-विमोहित विश्व यह तुमको नहीं पहचानता,
अव्यक्त! तुमको व्यक्ति अपने ही सदृश है मानता।
मैं भी भतीजा आपको अबतक रही नित मानती,
मायान्ध मैं भगवन्! भला कैसे तुम्हें पहचानती?

नाना चरित जब आप शैशव-कालमें करते रहे,
नर-नारि सब प्रिय दर्शकोंके चित्तको हरते रहे।
जब आप शैशव-प्रकृतिके नव दृश्य दिखलाते कभी,
उत्पात करते नित नये, माखन चुरा खाते कभी॥

जब एक दिन तुमने दहीकी फोड़ दी मटकी बड़ी,
भागी यशोदा हो कुपित, ले हाथमें पतली छड़ी।
तुम भग चले, फिर भी यशोदाने पकड़ तुमको लिया,
तत्काल लेकर रज्जु तुमको बाँध ऊखलसे दिया॥

रोने लगे, टप-टप दृगोंसे जल बहाने लग गये,
सुन्दर सुगोल कपोल, कज्जल-कालिमामें पग गये।
वह चाँद-सा मुखड़ा तुम्हारा, और वह लीला महा,
वह दूधकी दो दँतुलियाँ, तनुपर झगुल पीला अहा!

दोहा

निरखि कहे वह दिव्य छवि, ऐसा जगमें कौन ?
कहनेवाली अंध है, लखनेवाली मौन ॥
भूलूँ सब, भूलूँ न मैं, हरि वह छटा मनोज्ञ ।
मोहन-छवि छिनमें हरे, भूरि-भूरि भव-रोग ॥

करते चरित तुम नित नये प्रिय परम भक्तोंके लिये,
लीला ललित कर-कर हरे हर्षित सदा निज जन किये ।
मायामयी मदिरा पिला मोहन ! जगत मोहित किया,
कस मोह-बन्धनमें सभीको विश्व सञ्चालित किया ॥

उद्भव, प्रलय, उन्मेष और निमेष प्रभुके हैं कहे,
प्रभुके कृपा-कणसे सभी अग जग जगतमें जी रहे ।
अवतार यह धारण किया भूभार हरनेके लिये,
सुर-काज करनेके लिये, खल-पुञ्ज दलनेके लिये ॥

व्रज-बाल-बालन-संग विविध विहार करनेके लिये,
भूसुर-सुरभियोंका सतत उद्धार करनेके लिये ।
सात्त्विक सनातन-धर्मका विस्तार करनेके लिये,
अति घोर अत्याचारका प्रतिकार करनेके लिये ॥

कार्पण्य-तुच्छ-विचार-पुञ्ज उदार करनेके लिये,
सद्धर्म-पथिकोंका सतत सत्कार करनेके लिये ।
दुर्भेद्य-दुर्गोंपर अटल अधिकार करनेके लिये,
इन पाण्डवोंका वस्तुतः उपकार करनेके लिये ॥

सदा वेद गाते, नहीं पार पाते,
न गाते अघाते गुणाली तुम्हारी,
यशोदा-दुलारे ! तुम्हीं हो हमारे,
तुम्हींने उबारे, उज्याली तुम्हारी।

मुरारे ! खरारे ! विभो ! कैटभारे !
सदा दीन-प्यारे प्रणाली तुम्हारी,
भवाराम-माली, दया-शील-शाली,
निराली सुलीला सुलाली तुम्हारी॥

पिता और माता, सखा, श्रेष्ठ भ्राता,
तथा सर्व नाता, सुदाता तुम्हीं हो,
तुम्हें जो न ध्याता, सदा दुःख पाता,
महा दुःख-त्राता, विधाता तुम्हीं हो।

सभावीच नारी उघारी उधारी,
मुरारी तुम्हारी निराली उज्यारी,
स्वभक्तोपकारी, महानन्दकारी,
धराभार-हारी धराधार-धारी॥

भवाम्भोधि-सेतो, स्ववंशोच्च-केतो,
दयालो अहेतो स्वयंभू सुनामी,
खगाधीश-गामी, अजन्मा-अकामी,
अनामी नमामी, नमामी, नमामी।

गज-त्राण-कर्त्ता, स्वभक्ताधि-हर्त्ता,
निराधार-भर्त्ता, महादैत्य-नाशी,
रमा-प्रीति-दायी सदा शेष-शायी,
अनन्तादि स्थायी, सभी स्थान-वासी ॥

गुणातीत ज्ञानी, सदा सत्व-दानी,
किसीने न जानी तुम्हारी कहानी,
छबीली, फबीली, रँगीली, रसीली,
निराली—सुराली थके सर्व ज्ञानी।

भवाम्भोधि-कूलं, जगद्वृक्ष-मूलं,
स्वभक्तानुकूलं, महापाप-शूलं,
भजे मेघकायं, सुपद्मा-सहायं,
विभुं विश्वकायं, स्वमायादुकूलं ॥

दोहा

कहते कहते कुन्तिके, धीमे पड़े सुबैन।
पुलकित-तनु सहसा हुई सजल हुए दोउ नैन ॥

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा लिखित और सम्पादित पुस्तकें

विनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-टीका-सहित पृष्ठ ४५०, चित्र ३ सुनहरी, २ रंगीन, १ सादा मू० १) सजिल्द १।)

तुलसी-दल—इसमें इतने विषय हैं कि यह छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक, विद्वान्-मूर्ख, ज्ञानी-गृहस्थी और त्यागी सब के लिये कुछ-न-कुछ अपने मनकी बात मिल सकती है। पृ० २६४, मूल्य ॥) सजिल्द ॥=)

भक्त-बालक—इसमें चन्द्रहास, सुधन्वा, मोहन, गोविन्द और धन्नाकी भक्ति-रससे भरी हुई कथाएँ हैं ५ चित्र पृ० ८०, मू०।-)

भक्त-नारी—इसमें शबरी, मीरा, जना, करमैती और रबियाकी प्रेमभक्तिसे पूर्ण बड़ी ही रोचक कथाएँ हैं। ६ चित्र पृ० ८०, मू० ।-)

भक्त-पञ्चरत्न—इसमें रघुनाथ, दामोदर और उसकी पत्नी, गोपाल, शान्तोबा और उसकी पत्नी और नीलाम्बरदासके परम पावन चरित्र हैं। पृ० १०४, सचित्र मूल्य ।-)

पत्र-पुष्प—(सचित्र, कविता-संग्रह) पृष्ठ-संख्या ६६, मू० ≡)॥

मानव-धर्म—इसमें धर्मके दस लक्षणोंपर अच्छा विवेचन है। मूल्य ≡)

साधन-पथ—सचित्र पृष्ठ ७२, मूल्य =)॥

स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी—नये संस्करणमें १ तिरंगा चित्र भी है। पृ० ५६, मू० ≤)

आनन्दकी लहरें—इसमें हम दूसरोंको सुख पहुँचाते हुए खुद कैसे सुखी हों, यह बताया गया है। मू० -)॥

मनको वशमें करनेके उपाय—एक विष्णुभगवान्‌का चित्र है। मू० -)।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्यकी रक्षाके अनेक सरल उपाय बताये गये हैं। मू० -)

समाज-सुधार—समाजके जटिल प्रश्नोंपर प्रकाश डाला गया है मू० -)

दिव्य-सन्देश—वर्तमान दाम्भिक युगमें किस उपायसे शीघ्र भगवत्-प्राप्ति हो सकती है इसमें उसके सरल उपाय बताये हैं)।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

अन्य पुस्तकें

आचार्यके सदुपदेश—गोवर्धनपीठाधीश्वर १००८ जगद्गुरु श्री-शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्णतीर्थजी महाराजके उपदेशोंका संग्रह। मू०-)

माता—श्रीअरविन्दकी Mother नामक पुस्तिकाका हिन्दी-अनुवाद। इस पुस्तकका इतना ही परिचय देना बहुत होगा कि यह श्री-अरविन्दकी कल्याणकर विचारधारा या एक प्रिय श्रेष्ठ रचना है। मू० ।-)

सप्त-महाव्रत—इसमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद और अभय इन सात महाव्रतोंपर महात्मा गाँधीजी द्वारा लिखित बड़ी ही सुन्दर अनुभवपूर्ण व्याख्या है। मूल्य केवल -)

श्रुतिकी टेर—श्रीभोलेबाबाजी द्वारा सीधी-सादी बोल-चालकी-सी कवितामें लिखी गयी है। और दो खण्डोंमें विभक्त है। पृष्ठ-संख्या १५०, मूल्य केवल ।)

वेदान्त-छन्दावली—इसमें श्रीभोलेबाबाजीके आध्यात्मिक विचार और वेदान्तके विचारणीय प्रश्न और उपदेश हैं, श्रीशुकदेवजीका चित्र भी है। पृ० ७४, मू० =)॥

चित्रकूटकी झाँकी—इसमें पावन तीर्थ चित्रकूटका और उसके आस-पासके तीर्थोंका विशद वर्णन है। चित्रकूट-सम्बन्धी २२ चित्र हैं। मूल्य =)

देवर्षि नारद—जैसे भगवान्‌के चरित्रोंसे हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं वैसे ही नारदजीकी पुण्यमयी गाथाएँ भी हमारे शास्त्रमें ओतप्रोत हैं। उनमेंसे कुछका वर्णन करनेका प्रयत्न किया गया है।

भागवतरत्न प्रह्लाद—यह पवित्र चरित्र हम माँ, बहिन, बेटी, भाई, भौजाई और सबके हाथमें बिना किसी संकोचके पढ़नेके लिये दे सकते हैं पृष्ठ ३४०, एण्टिक कागज, सुन्दर साफ छपाई, ३ रंगीन और ४ सादे चित्र, मूल्य केवल १) सजिल्द १।)

सेवाके मन्त्र—सच्ची सेवा क्या है और सच्चा सेवक कौन है, इस बात-का पता यह छोटी-सी पुस्तिका पढ़नेसे लग जायगा। पृष्ठ ३२, मूल्य)॥

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

गीताप्रेसकी गीताएँ

गीता-मूल,पदच्छेद,अन्वय,साधारण भाषाटीका, टिप्पणी,प्रधान और सूक्ष्मविषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, ५७० पृष्ठ, ४ बहुरंगे चित्र मू० १।)

गीता-प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≡) सजिल्द ॥≈)

गीता-साधारण भाषाटीका, त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, सचित्र, ३५२ पृष्ठ, मूल्य =)॥ सजिल्द ≡)॥

गीता-यह २०×३० सोलह पेजी गीता मोटे टाइपमें छापी गयी है, विषय ढाई आनेवाली गीताके ही रक्खे गये हैं। टाइप बड़े हो जानेसे यह पुस्तक स्त्रियों और बूढ़ोंके लिये अधिक उपयोगी हो गयी है। पृष्ठ ३३२, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≡)

गीता-मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य ।-) सजिल्द ।≡)

गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ≈)

गीता-मूल, ताबीजी साइज २×२॥ इञ्च सजिल्द ≈)

गीता-डायरी-सन् १९३२ की मूल्य ।) सजिल्द ।-)

गीता-सूची, भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्रकाशित गीतासम्बन्धी ग्रन्थोंकी वृहत् सूची ॥)

गीता-सूक्ष्मविषय-गीताके प्रत्येक श्लोकोंका हिन्दीमें सारांश है, मू० -)।

श्रीमद्भगवद्गीता गुजराती भाषामें

सभी विषय १।) वालीके समान, मूल्य १।)

श्रीमद्भगवद्गीता बंगला भाषामें

सभी विषय ॥≈) आनेवाली गीताके समान, मूल्य १) सजिल्द १।)

पता-गीताप्रेस, गोरखपुर